संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १२
अंक : १०३
जुलाई २००१
श्रावण मास
विक्रम.सं. २०५८

गुरुपूर्णिमा महोत्सव

हिन्दी

ब्रह्मलीन पूज्यपाद
साँई श्री लीलाशाहजी महाराज

पूज्यपाद
संत श्री आसारामजी बापू

हम न हँसकर सीखे हैं, न रोकर सीखे हैं।
जो कुछ भी सीखे हैं, गुरु के होकर सीखे हैं ॥

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १२
अंक : १०३
९ जुलाई २००१
श्रावण मास, विक्रम संवत् २०५८ (गुज. २०५७)

सम्पादक : क. रा. पटेल
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
E-Mail : ashramamd@ashram.org
Web-Site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग
SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

गुरुपूर्णिमा

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुर्साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

गुरुपूर्णिमा अर्थात् गुरु के पूजन का पर्व । गुरु की पूजा, गुरु का आदर कोई व्यक्ति की पूजा नहीं है, व्यक्ति का आदर नहीं है लेकिन गुरु की देह के अंदर जो विदेही आत्मा है, परब्रह्म परमात्मा है उसका आदर है... ज्ञान का आदर है... ज्ञान का पूजन है... ब्रह्मज्ञान का पूजन है...

गुरुपूर्णिमा को व्यासपूर्णिमा भी कहते हैं । इसी दिन भगवान वेदव्यासजी ने विश्व का प्रथम आर्ष ग्रंथ 'ब्रह्मसूत्र' पूर्ण किया था ।

वशिष्ठजी महाराज के पौत्र, पाराशर ऋषि के सपूत वेदव्यासजी जन्म के कुछ समय बाद ही अपनी माँ से कहने लगे :

''माँ ! अब हम जाते हैं तपस्या के लिए ।''

माँ : ''बेटा ! पुत्र तो माता-पिता की सेवा के लिए होता है । माता-पिता के अधूरे कार्य को पूर्ण करने के लिए होता है और तुम अभी से जा रहे हो ?''

व्यास : ''माँ ! जब तुम याद करोगी और जरूरी काम होगा तब मैं तुम्हारे आगे प्रगट हो जाऊँगा ।''

माँ से आज्ञा लेकर व्यासजी तप के लिए चल दिये । वे बदरिकाश्रम गये । वहाँ एकांत में समाधि लगाकर रहने लगे ।

बदरिकाश्रम में बेर पर जीवन-यापन करने के कारण उनका एक नाम 'बादरायण' भी पड़ा । व्यासजी द्वीप में प्रगट हुए इसलिए उनका नाम 'द्वैपायन' पड़ा । कृष्ण (काले) रंग के थे इसलिए उन्हें 'कृष्ण द्वैपायन' भी कहते हैं । मानव की बिखरी हुई चेतना को, बिखरे हुए जीवन को, बिखरे हुए संकल्प-विकल्पों को सुव्यवस्थित करके परमपद तक पहुँचाने की व्यवस्था भी उन्होंने की, इसलिए उन्हें 'व्यास' भी कहते हैं । उन्होंने वेदों का विस्तार किया, इसलिए उनका नाम 'वेदव्यास' भी पड़ा ।

ज्ञान के असीम सागर, भक्ति के आचार्य, विद्वत्ता की पराकाष्ठा और अथाह कवित्व शक्ति... इनसे बड़ा कोई कवि मिलना मुश्किल है । जो जीव कीड़ी से लेकर कुंजर (हाथी) तक एवं मनुष्य से लेकर यक्ष, गंधर्व, किन्नर एवं देवता की योनियों में भटके हैं और अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर पाये ऐसे समस्त जीवों के उद्देश्य की पूर्ति का ज्ञान दिलाने की जिन्होंने व्यवस्था की ऐसे भगवान वेदव्यास के नाम से ही 'आषाढ़ी पूनम' का नाम 'व्यास पूनम' पड़ा है ।

यह सबसे बड़ी पूनम मानी जाती है क्योंकि बड़े-में-बड़े उस परमात्मा के ज्ञान, परमात्मा के ध्यान और परमात्मा की प्रीति की तरफ ले जानेवाली है यह पूनम । इसको 'गुरुपूनम' भी बोलते हैं ।

जब तक मनुष्य को सत्य के ज्ञान की प्यास रहेगी, आगे बढ़ने की, सात्त्विक सुख लेने की इच्छा रहेगी तब तक ऐसे व्यास पुरुषों का, ब्रह्मज्ञानियों का आदर-पूजन होता रहेगा ।

व्यासजी ने वेदों के विभाग किये ताकि साधारण इन्सान भी उसे समझ सके । विश्व का प्रथम आर्ष ग्रंथ 'ब्रह्मसूत्र' व्यासजी ने बनाया । पाँचवाँ वेद 'महाभारत' व्यासजी ने ही बनाया । भक्ति ग्रंथ 'भागवत पुराण' भी व्यासजी की रचना है एवं अन्य १७ पुराणों का संकलन भी भगवान वेदव्यासजी ने ही किया है ।

व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वं... विश्व में जितने भी धर्म ग्रंथ हैं, फिर वे चाहे किसी भी मत-मजहब-पंथ के हों, उनमें अगर कोई सात्त्विक और कल्याणकारी बातें हैं तो सीधे-अनसीधे भगवान वेदव्यासजी के शास्त्रों से ली गयी हैं । व्यासजी ने

पूरी मानवजाति को कल्याण का खुला रास्ता बता दिया है। ब्रह्मवेत्ता शिरोमणि भगवान वेदव्यासजी को आज व्यासपूनम के दिन हम फिर-फिर से प्रणाम करते हैं... वेदव्यासजी की कृपा सभी साधकों के चित्त में चिर स्थायी रहे...'

जिन-जिन के अंतःकरण में ऐसे व्यास भगवान का ज्ञान, उनकी अनुभूति और निष्ठा उभरी, ऐसे पुरुष अभी भी ऊँचे आसन पर बैठते हैं तो कहा जाता है कि भागवत कथा में अमुक महाराज व्यासपीठ पर विराजेंगे।

व्यासजी के शास्त्र-श्रवण के बिना भारत तो क्या, विश्व में भी कोई आध्यात्मिक उपदेशक नहीं बन सकता - व्यासजी का ऐसा अगाध ज्ञान है। जो व्यासपीठ पर बैठते हैं, ज्ञान देने की, गुरु की जगह पर बैठते हैं, तो उनकी ज़िम्मेदारी हो जाती है कि भगवान व्यास को जो विचार और सिद्धांत पसंद नहीं हैं, व्यासपीठ से वे न कहें। ऐसे ही पुत्र या सत्‌शिष्य की यह ज़िम्मेदारी होती है कि गुरु के हृदय को जो पसंद न हो ऐसा व्यवहार, आचरण, चिंतन न करे। अगर करेगा तो गुरु जहाँ पहुँचाना चाहते हैं शिष्य वहाँ नहीं पहुँच पायेगा। यहाँ तो गुरुकृपा उसी पर होती है जो शिष्यत्व के गुणों को अपने दिल में सँभालता है। गुरु को तो अपना दिल देकर रिझाया जाता है।

व्यासपूर्णिमा का पर्व वर्षभर की पूर्णिमा मनाने के पुण्य का फल तो देता ही है साथ ही नई दिशा, नया संकेत भी देता है और कृतज्ञता का सद्‌गुण भी भरता है।

जिन महापुरुषों ने कठोर परिश्रम करके हमारे लिए सब कुछ किया, उन महापुरुषों की कृतज्ञता ज्ञापन का अवसर, ऋषिऋण चुकाने का अवसर ऋषियों की प्रेरणा और आशीर्वाद पाने का अवसर... यही अवसर है - व्यासपूर्णिमा।

इस व्यासपूर्णिमा के दो उद्देश्य हैं :

(१) वर्ष में कम-से-कम एक बार ऋषिऋण से हम उऋण हो जायें।

(२) आगे का संदेश, आगे की प्रेरणा, आगे की तपस्या-पुण्याई प्राप्त करके अपने उद्धार का अवसर प्राप्त कर लें।

ऐहिक और स्वर्गीय सफलताओं के लिए तो और भी पर्व हैं लेकिन ये सफलताएँ जिस चैतन्य की सत्ता से मिलती हैं, उस गुरुतत्त्व की ख़बर देता है यह पर्व, इसीलिए इसे गुरुपूर्णिमा पर्व कहते हैं।

यह गुरु-परंपरा कबसे मनायी जा रही है ?

एक करोड़, २८ लाख वर्ष पूर्व से... ना, ना, उसके भी पहले से यह परंपरा चली आ रही है।

भगवान राम भी गुरुद्वार पर जाते थे। ४३ लाख २० हजार वर्ष बीतते हैं तब एक चतुर्युगी बीतती है (सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग) ऐसी ७१ चतुर्युगियाँ बीतती हैं तो एक मन्वंतर बीतता है। अभी सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है। सातवें मन्वन्तर की २४ वीं चतुर्युगी के त्रेता में श्रीराम आये थे और यह २८ वीं चतुर्युगी है। त्रेता चला गया, द्वापर चला गया, अब कलियुग है अर्थात् करीब १ करोड़ ७१ लाख वर्ष पूर्व, (अभी कुछ वर्ष पहले जो रामायण 'सीरियल' बना उसमें देखा होगा अथवा जिन्होंने शास्त्र पढ़े होंगे उन्होंने समझा होगा।) भगवान राम भी गुरुदेव के चरणों में मत्था टेकते थे।

प्रात काल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

सीता-रामजी गुरु के चरण धो रहे हैं और चरणामृत ले रहे हैं... ऐसा मैंने सीरियल में देखा और वह सीरियल शास्त्र के आधार पर बनाया गया है। भगवान राम जैसे किसीके चरण धोते हैं ऐसा कोई डायरेक्टर अपनी ओर से डाले तो लोग उसकी खोपड़ी तोड़ देवें।

अर्थात् बात यह है, श्रीरामजी गुरुपादसेवा करते थे। रामजी करते थे तबसे यह बात चालू नहीं हुई है, रामजी के पहले उनके पिता, पिता के पिता... दिलीप राजा, रघु राजा भी गुरुसेवा खोज लेते थे। दिलीप राजा तो गुरु की गायें चराते थे...

गुरु की गायें चराना या उनके शरीर की अनुकूलता करना केवल यही ऐहिक सेवा नहीं है, उनके दैवी कार्य करना भी गुरु की ऐहिक सेवा है और गुरु की आज्ञा के अनुसार अपने मन को ढाल देना यह गुरु की आत्मिक सेवा है।

यह गुरुपूर्णिमा प्राचीन काल से तमाम देशों में मनायी जाती थी। यह पर्व एटलांटिक सभ्यता में

बड़े आदर से मनाया जाता था। दक्षिण अमेरिका, यूरोप, जापान, मिस्र, चीन, तिब्बत आदि जगहों पर भी बड़े आदर से यह पर्व मनाया जाता था।

गुरुपूनम के दिन भक्त-साधक व्रत रखते हैं जब तक गुरुदेव का प्रसाद, ज्ञान-प्रसाद नहीं पाते तब तक बाहर का प्रसाद नहीं लेते।

गुरु ज्ञान का सागर है, जो सत्‌शिष्य का मुखमंडल देखकर छलकता है, उभरता है। सद्‌गुरु को जितना दें उतना थोड़ा है और जितना दिया उतना वे बहुत भी मानते हैं। इसमें बाह्य तराजू नहीं होता।

सुकरात का शिष्य कहलाने में प्लेटो अपने को बड़भागी मानते हैं, प्लेटो का शिष्य कहलाने में अरस्तु अपने को सौभाग्यशाली मानते हैं। इमर्सन थोरो का शिष्य कहलाने में अपने को बड़भागी मानते हैं। मार्क्स का शिष्य कहलाने में लेनिन अपने को बड़भागी मानते हैं, समर्थ रामदास का शिष्य कहलाने में शिवाजी अपने को भाग्यशाली मानते हैं, रामकृष्ण का शिष्य कहलाने में विवेकानंद अपने को बड़भागी मानते हैं और प.पू. लीलाशाह बापू का शिष्य कहलाने में मैं (संत श्री आसारामजी बापू) अपने को भाग्यशाली मानता हूँ।

गुरु-शिष्य परंपरा, इस प्रकार आगे बढ़ती ही चली जाती है। चाहे कुल-परंपरा का ज्ञान हो, चाहे विद्या हो, चाहे सत्‌शिष्य एवं सद्‌गुरु का संबंध हो- इन तीन संबंधों से ही संस्कृति का रक्षण होता है एवं संस्कृति का ज्ञान आगे-से-आगे एक-दूसरे के हवाले किया जाता है। पिता अपनी कला-कुशलता, अपनी योग्यता एवं संपदा अपने पुत्र को थमाता है, शिक्षक अपने विद्यार्थी को देता है और सद्‌गुरु अपने सत्‌शिष्य को सत्य का अनुभव देने के लिए ही सारी चेष्टाएँ करते हैं...

रेडियो से संगीत सुनना एक बात है और संगीतज्ञ होना दूसरी बात है। संगीतज्ञ होना है तो किसी कुशल संगीतज्ञ के साथ स्वर-से-स्वर, ताल-से-ताल मिलाकर कुछ समय उसके सान्निध्य में रहकर अभ्यास करना पड़ता है। ऐसे ही हृदय का संगीत सुनना हो, हृदय का प्रकाश पाना हो, हृदयस्थ परमेश्वरीय प्रीति पाना हो तो परमात्मप्रीति से जो छके हैं ऐसे महापुरुषों के सान्निध्य में बार-बार जायें। बार-बार अगर नहीं जा पाते तो गुरुपूनम के अवसर पर तो सबको सुंदर मौका मिल ही जाता है।

उन महापुरुषों के बोलते-चलते, व्यवहार करते, निर्भयता, निःस्पृहता, निरहंकारिता, निःर्दुखता आदि दिव्य गुण शिष्य की नजरों में आते हैं। धीरे-धीरे शिष्य उनके सद्‌गुणों को अपने में आत्मसात् कर लेता है। क्षमाशीलता, निर्मलदृष्टि, आत्म-प्रीति, आत्म-मौन, आत्मा में रमण की योग्यता इस प्रकार की महापुरुष की जो सहज स्वाभाविक अवस्था है, साधक उसको देख-सुनकर, संकेत पाकर अपनी अवस्था को भी वैसी बनाकर संसार से पार हो जाता है। फिर दुःखमय संसार में होते हुए भी सत्‌शिष्य निर्दुःख नारायण में जब चाहे तब गोता मारने में सक्षम बन जाता है। इसीका नाम है सद्‌गुरु एवं सत्‌शिष्य का पुनीत संबंध...

व्यास पूनम मनाने के दो पहलू हैं। एक तो ऐहिक दृष्टि से कि : जिन्होंने दिन-रात एक करके जिस परमात्मा को पाया, परमात्मतत्त्व में जगे, उस परमात्मतत्त्व की समाधि व ज्ञान का आनन्द और माधुर्य छोड़कर जन-जन के लिए न जाने कितने-कितने शास्त्रों की बातें समझाकर, कितने-कितने दृष्टांत आदि देकर हमको इतना उन्नत किया तो हम कृतघ्नता के दोष से दब न मरें, इसलिए कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए गुरु के चरणों में रोज नहीं तो इस पर्व के दिन तो महापुरुषों के पास अवश्य जायें।

दरशन कीजे साधु का दिन में कई कई बार।
आसोजा का मेह ज्यों बहुत करै उपकार॥
कई बार नहिं करि सकै दोय बखत करि लेय।
कबीर साधू दरस ते काल दगा नहिं देय॥
दोय बखत नहिं करि सकै दिन में करु इक बार।
कबीर साधु दरस ते उतरे भौ जल पार॥
दूजै दिन नहिं करि सकै तीजै दिन करु जाय।
कबीर साधू दरस ते मोक्ष मुक्ति फल पाय॥
तीजै चौथै नहिं करै सातैं दिन करु जाय।
या में विलंब न कीजिये कहै कबीर समुझाय॥

सातैं दिन नहिं करि सकै पाख पाख करि लेय।
कहे कबीर सो भक्तजन जनम सुफल करि लेय॥
पाख पाख नहिं करि सकै मास मास करु जाय।
ता में देर न लाइये कहै कबीर समुझाय॥

जैसा संग होगा वैसा रंग अंतःकरण को लगेगा अतः बार-बार उन सत्पुरुषों का संग करना चाहिए- ऐसा शास्त्र-वचन है लेकिन बार-बार नहीं कर पाते हैं तो कम-से-कम ऐसे तिथि और त्यौहार को तो उन सत्पुरुषों का सत्संग-सान्निध्य और कृपा-कटाक्ष प्राप्त करके हम असली यात्रा में आगे बढ़ें।

दूसरा आंतरिक पहलू यह है कि वर्ष भर में जो साधन-भजन हमने किये, नश्वर आकर्षण से बचकर शाश्वत की प्रीति की यात्रा की, उसमें जो कुछ उपलब्धियाँ हुईं, उससे फिर अब नया पाठ लें... जैसे विद्यार्थी हर साल नयी कक्षा में आगे बढ़ता है ऐसे ही आगे बढ़ने के कुछ संकेत, कुछ शुभ संकल्प, कुछ शुभ भाव, कुछ बढ़िया सामग्री, कुछ बढ़िया साधन मिल जायें। गुरुपूर्णिमा में अन्य पूर्णिमाओं से विशेष पुण्य लाभ तो होता ही है। साथ-ही कृतज्ञता व्यक्त करने का और तप, व्रत, साधना में आगे बढ़ने का भी यह त्योहार है।

संयम, सहजता, शांति और माधुर्य तथा जीते जी मधुर जीवन की दिशा बतानेवाली पूनम है गुरुपूनम ! ईश्वरप्राप्ति की सहजसाध्य, साफ-सुथरी दिशा बतानेवाला त्योहार है - गुरुपूनम।

*

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

एतत्सर्वं गुरोर्भक्त्या...

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

हम लोगों के जीवन में दो तरह के रोग होते हैं : बहिरंग और अन्तरंग। बहिरंग रोगों की चिकित्सा तो डॉक्टर लोग करते ही हैं और वे इतने दुःखदायी भी नहीं होते हैं जितने कि अन्तरंग रोग होते हैं।

हमारे अन्तरंग रोग हैं काम, क्रोध, लोभ और मोह। भागवत में इन एक-एक रोग की निवृत्ति के लिए एक-एक औषधि बतायी है।

ओषति दोषान् धत्ते गुणान् इति औषधिः।

जो दोष को जला दे और गुणों का आधान कर दे, उसका नाम है औषधि।

व्यास भगवान ने सभी दोषों की अलग-अलग औषध बतायी, जैसे काम के लिए असंकल्प, क्रोध के लिए निष्कामता, लोभ के लिए अर्थानर्थ का दर्शन, भय के लिए तत्त्वावदर्शन, अहंकार के लिए बड़ों की शरण में रहना आदि। फिर सभी दोषों की एक औषधि बताते हुए कहा कि सभी दोष गुरुभक्ति से दूर हो जाते हैं - **एतद् सर्वं गुरोर्भक्त्या।**

यदि अपने गुरु के प्रति भक्ति हो तो वे बतायेंगे कि, 'बेटा ! तुम गलत रास्ते से जा रहे हो। इस रास्ते से मत जाओ। उसको ज्यादा मत देखो, उससे ज्यादा बात मत करो, उसके पास ज्यादा मत बैठो, उससे मत चिपको, अपनी सोच-संगति ऊँची रखो,' आदि।

जब गुरु के चरणों में तुम्हारा प्रेम हो जायेगा, तब दूसरों से प्रेम नहीं होगा। भक्ति में ईमानदारी चाहिए, बेईमानी नहीं। बेईमानी सम्पूर्ण दोषों व

दुःखों की जड़ है। सुगमता से दोषों और दुःखों पर विजय प्राप्त करने का उपाय है ईमानदारी के साथ, सच्चाई के साथ, श्रद्धा के साथ और हित के साथ गुरु की सेवा करना।

श्रद्धा पूर्ण नहीं होगी और यदि तुम कहीं भोग करने लगोगे या कहीं यश में, पूजा में, प्रतिष्ठा में फँसने लगोगे और गुरुजी तुम्हें मना करेंगे तो बोलोगे कि, 'गुरुजी हमसे ईर्ष्या करते हैं, हमारी उन्नति इनसे देखी नहीं जाती, इनसे नहीं देखा जाता है कि लोग हमसे प्रेम करें। गुरुजी के मन में अब ईर्ष्या आ गयी और ये अब हमको आगे नहीं बढ़ने देना चाहते हैं।'

साक्षात् भगवान तुम्हारे कल्याण के लिए गुरु के रूप में पधारे हुए हैं और ज्ञान की मशाल जलाकर तुमको दिखा रहे हैं, दिखा ही नहीं रहे हैं, तुम्हारे हाथ में दे रहे हैं। तुम देखते हुए चले जाओ आगे... आगे... आगे...। परंतु उनको कोई साधारण मनुष्य समझ लेता है, किसीके मन में ऐसी असद् बुद्धि, ऐसी दुर्बुद्धि आ ज़ाती है तो उसकी सारी पवित्रता गजस्नान के समान हो जाती है। जैसे हाथी सरोवर में स्नान करके बाहर निकले और फिर सूँड से धूल उठा-उठाकर अपने ऊपर डालने लगे तो उसकी स्थिति वापस पहले जैसी ही हो जाती है। वैसे ही, गुरु को साधारण मनुष्य समझनेवाले की स्थिति भी पहले जैसी ही हो जाती है।

ईश्वर सृष्टि बनाता है अच्छी-बुरी दोनों, सुख-दुःख दोनों, चर-अचर दोनों, मृत्यु-अमरता दोनों। परन्तु संत महात्मा, सद्गुरु मृत्यु नहीं बनाते हैं, केवल अमरता बनाते हैं। वे जड़ता नहीं बनाते हैं, केवल चेतनता बनाते हैं। वे दुःख नहीं बनाते, केवल सुख बनाते हैं। तो संत-महात्मा माने केवल अच्छी-अच्छी सृष्टि बनानेवाले, लोगों के जीवन में साधन डालनेवाले, उनको सिद्ध बनानेवाले, उनको परमात्मा से एक करानेवाले।

लोग कहते हैं कि परमात्मा भक्तों पर कृपा करते हैं, तो करते होंगे, पर **महात्मा न हो तो कोई भक्त ही नहीं होगा** और भक्त ही जब नहीं होगा तो परमात्मा किसी पर कृपा भी कैसे करेंगे ? इसलिए परमात्मा सिद्ध-पदार्थ हैं और महात्मा प्रत्यक्ष हैं। परमात्मा या तो परोक्ष हैं,- सृष्टिकर्त्ता-कारण के रूप में और या तो अपरोक्ष हैं - आत्मा के रूप में। परोक्ष हैं तो उन पर विश्वास करो और अपरोक्ष हैं तो 'निर्गुणं, निष्क्रियं, शान्तं' हैं। परमात्मा का यदि कोई प्रत्यक्ष स्वरूप है तो वह साक्षात् महात्मा ही है। महात्मा ही आपको ज्ञान देते हैं। **आचार्यात् विदधति, आचार्यवान पुरुषो वेदा।**

जो लोग आसमान में ढेला फेंककर निशाना लगाना चाहते हैं, उनकी बात दूसरी है। पर, असल बात यह है कि बिना महात्मा के न परमात्मा के स्वरूप का पता चल सकता है, न उसके मार्ग का पता चल सकता है। हम परमात्मा की ओर चल सकते हैं कि नहीं, इसका पता भी महात्मा के बिना नहीं चल सकता है। इसलिए, भागवत के प्रथम स्कंध में ही भगवान के गुणों से भी अधिक गुण महात्मा में बताये गये हैं, तो वह कोई बड़ी बात नहीं है। ग्यारहवें स्कन्ध में तो भगवान ने यहाँ तक कह दिया है कि :

मद्भक्तपूजाभ्यधिका।

'मेरी पूजा से भी बड़ी है महात्मा की पूजा।'

ईसाई मिशनरियाँ और गाँधीजी

ईसाई मिशनरियाँ कहती हैं कि : ''वे धर्मपरिवर्तन द्वारा विश्व की तथा हिंदू समाज की उन्नति करना चाहती हैं। पर गाँधीजी ने कहा कि : ''हमें गौमांस भक्षण और शराब पीनेवाला ईसाई धर्म नहीं चाहिए।'' (हरिजन ६.३.३७) गाँधीजी ने आगे कहा : ''ईसाई और मुसलमान हिंदुओं की ऊँच-नीच व अस्पृश्यता को दूर नहीं कर सकते। यह कार्य खुद हिंदुओं को ही करना होगा। गाँधीजी के अनुसार, ''धर्म परिवर्तन वह जहर है जो सत्य और व्यक्ति की जड़ों को खोखला कर देता है। मिशनरियों के प्रभाव से हिंदू परिवार का विदेशी भाषा, वेषभूषा, रीति-रिवाज के द्वारा विघटन हुआ है। यदि मुझे कानून बनाने का अधिकार होता तो मैं धर्मपरिवर्तन बंद करवा देता। इसे तो मिशनरियों ने एक व्यापार बना लिया है पर धर्म आत्मा की उन्नति का विषय है इसे रोटी, कपड़ा या दवाई के बदले में बेचा या बदला नहीं जा सकता।''

स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज की गुरुभक्ति

पूज्यपाद संत शिरोमणि श्री आसारामजी महाराज के सद्गुरु, विश्ववंदनीय, प्रातःस्मरणीय श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज अर्थात् हमारे दादागुरु से कौन साधक अपरिचित है ?

ऐसे पावन ज्ञानी महापुरुषों की महिमा का वर्णन करते हुए 'नारदभक्ति सूत्र' में लिखा है :

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि, सुकर्मी कुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि ॥६८॥

अर्थात् (आत्मज्ञानी) तीर्थों को तीर्थत्व प्रदान करते हैं, कर्मों को पवित्रता प्रदान करते हैं, शास्त्रों को शास्त्रत्व प्रदान करते हैं।

पुण्य सलिला सिंधु नदी के तट पर स्थित सिंध प्रदेश के हैदराबाद जिले के महराब चांडाई नामक गाँव में ब्रह्मक्षत्रिय कुल में परहित चिंतक, धर्मप्रिय एवं पुण्यात्मा टोपणदास के यहाँ उनकी धर्मपत्नी हेमीबाई की कोख से सिंधी पंचांग के अनुसार संवत् १९३७ के २३ फाल्गुन के शुभ दिवस पर जिस सुपुत्र का जन्म हुआ- वे ही थे श्री स्वामी लीलाशाहजी महाराज !

बाल्यकाल से ही वे साहसी, निर्भय, दृढ़मनोबल वाले एवं अद्‌भुत प्रतिभावान् थे ! मात्र बारह वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने चोगा धारणकर संन्यास ग्रहण कर लिया एवं टंडोमुहमदखान में वेदांती, श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ, संत श्री केशवानंदजी के श्रीचरणों में समर्पित हो गये।

श्री लीलारामजी की श्रद्धा एवं प्रेम को देखकर स्वामी श्री केशवानंदजी ने उनके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए पूछा : ''यह चोगा तुझे किसने पहनाया है ? संत का वेश पहनने मात्र से कोई संत नहीं बन जाता वरन् जिसके जन्म-मरण में घसीटनेवाली वासना और अज्ञान का अंत हो जाता है उसे ही संत कहा जाता है।''

श्री लीलारामजी ने तुरंत नम्रतापूर्वक जवाब दिया : ''साँई ! किसीने यह चोगा (अंगरखा) पहनाया नहीं है। मेरा दिल संसार से विरक्त हो गया है। दिल दातार को बेच दिया है। मैं ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करके स्वयं ही यह चोगा बनाकर, पहनकर आपकी शरण में आया हूँ। मैं आपका बालक हूँ। आपकी दया-कृपा से मुझे ईश्वरप्राप्ति करनी है।''

तब स्वामी श्री केशवानंदजी ने कहा : ''बेटा ! चोगा पहनने अथवा भगवा कपड़ा रँगने से कोई संत या संन्यासी नहीं बन जाता है। सत्य को, ईश्वर को प्राप्त करने के लिए तो तपस्या की जरूरत है, सेवा करने की जरूरत है। यहाँ तो अपने को, अपने अहं को मिटाने की जरूरत है। अपने अंतर में से विषय-वासनाओं को निकालने की जरूरत है।''

श्री लीलारामजी ने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक कहा : **''यह सेवक आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार है। मुझे संसार के किसी भी सुख को भोगने की इच्छा नहीं है। मैं समस्त संबंधों का त्याग करके आपकी शरण में आया हूँ।''**

ऐसे जवाब से संतुष्ट होकर संत श्री केशवानंदजी ने खुशी से श्री लीलारामजी को अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया।

उपनिषदों में भी आया है कि आत्मज्ञान के मुमुक्षु संसार को छोड़कर, गुरु के चरणों का सेवन करते हुए वर्षों तक सेवा एवं साधनारूपी कठिन तपस्या करके सत्य का अनुभव प्राप्त करते हैं। श्री लीलारामजी भी निष्ठापूर्वक रात-दिन गुरुसेवा एवं साधना में अपनेको रत रखने लगे। वे सुबह जल्दी उठकर आश्रम की सफाई करते, पानी भरते, भोजन बनाकर गुरुदेव को खिलाते, गायों के लिए

घास काटते, गायों की सब सेवा करते, आश्रम में जो अतिथि आते उन्हें भोजन बनाकर खिलाते, साधु-संतों की देखभाल करते, आधी रात तक गुरुदेव की चरणचंपी करते।

श्री लीलारामजी की दृढ़ता एवं तत्परता देखकर गुरु उन्हें सच्चे रंग में रँगने लगे। श्री लीलारामजी भी गुरु के साथ खूब मर्यादा रखते। खूब कम एवं मर्यादित, सारगर्भित और सत्य बोलते थे। वे अपना समय सदैव जप, ध्यान, सत्संग, सत्शास्त्रों के अध्ययन और सेवा में सजगता से लगाये रखते थे।

खाली दिमाग शैतान का घर होता है। खाली मन गपशप में लगता है अथवा आवारा मन इधर-उधर की बातें करता है। श्री लीलारामजी कभी ऐसा नहीं करते थे। केवल दिखाने के लिए ही उनका साधक या शिष्य जैसा व्यवहार नहीं था वरन् वे तो सच्चे सत्शिष्य थे।

उनका कद छोटा एवं देह का रंग श्याम था। दिखने में भोले-भाले लगते किन्तु व्यक्तित्व आकर्षक था। वाणी पर उनका बड़ा संयम था। वे आश्रम में सभी गुरुभाइयों के साथ विनम्र एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार रखते थे।

जिस प्रकार कुम्हार घड़ा बनाते वक्त बाहर से कठोर व्यवहार करता दिखता है किन्तु अंदर से अपने कोमल हाथ का आधार देता है वैसे ही सद्गुरु बाहर से शिष्य के साथ कठोर व्यवहार करते, कठोर कसौटी करते दिखते हैं परंतु अंदर से उनका हृदय करुणा-कृपा से परिपूर्ण होता है। नरसिंह मेहता ने गुजराती में ठीक ही गाया है :

भोंय सुवाडुं भूखे मारुं, ऊपरथी मारुं मार।
एटलुं करतां जो हरि भजे तो करी नाखुं निहाल॥

अर्थात्

धरा सुलाऊँ भूखा मारूँ, ऊपर से लगाऊँ मार।
इतना करते हरि भजे, तो कर डालूँ निहाल॥

इस प्रकार निहाल कर देनेवाले सद्गुरु की फटकार, कड़वे शब्द जिन जिज्ञासु साधकों-शिष्यों को मिल जाते हैं वे सचमुच धन्य हैं।

स्वामी श्री केशवानंदजी महाराज लीलारामजी की सेवा और भक्ति से खूब प्रसन्न रहते थे। वे श्री लीलारामजी को 'विचारसागर', 'पंचीकरण', भर्तृहरि का 'वैराग्यशतक', 'श्रीमद्भगवद्गीता', 'सारसूक्तावली' एवं उपनिषद पढ़ाते। ऐसे उच्च कोटि के वेदान्त के ग्रंथों को कंठस्थ करके दूसरे दिन सुनाने के लिए कहते। कभी-कभी अत्यधिक सेवा के कारण श्री लीलारामजी को शास्त्र कंठस्थ करने का समय न मिलता तो गुरुदेव कान पकड़कर इतने जोर से गाल पर थप्पड़ मारते कि गाल पर उँगलियों के निशान रह जाते।

जैसे-जैसे समय गुजरता गया वैसे-वैसे श्री लीलारामजी की आत्मानुभव की उत्कंठा तीव्र-तीव्रतर होने लगी। यह अवस्था देखकर गुरुदेव ने कहा : ''लीलाराम ! संत रतन भगत के आश्रम में एकांत में रहकर साधना करो।''

गुरुआज्ञानुसार श्री लीलारामजी संत रतन भगत के आश्रम में जाकर गहन साधना में तल्लीन हो गये। कभी चने तो कभी मूँग खाकर अपनी भूख मिटा लेते तो कभी-कभी कितने ही दिनों तक उपवास भी कर लेते थे। इस प्रकार कठोर तितिक्षाएँ सहन करते-करते श्री लीलारामजी आत्म-साक्षात्कार के पथ पर अग्रसर होने लगे।

आत्म-साक्षात्कार के इन पथिक की यात्रा का अंत हुआ। श्री लीलारामजी का तप और वैराग्य परिपक्व हुआ। उनकी गुरुभक्ति फली और उसके परिपाकस्वरूप बीस वर्ष की उम्र में ही उन्होंने अपने आत्मस्वरूप का साक्षात्कार कर लिया। जिसके लिए घर-बार छोड़ा था, सगे-संबंधी छोड़े थे, धन-ऐश्वर्य छोड़ा था, फकीरी अपनायी थी, जप-तप, आसन-प्राणायाम, ध्यान-समाधि का अभ्यास किया था उस लक्ष्य को गुरुकृपा से हासिल कर लिया। सद्गुरुदेव ने घर में ही घर बता दिया... साधक में से सिद्ध अवस्था को पा लिया... अपने अंदर ही परमानंदस्वरूप परमात्मा का अनुभव हो गया।

संत-सुवास युगों युगों तक सुरभित होती रहती है। आज उन्हीं स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज का कृपा प्रसाद पूज्यपाद सद्गुरुदेव के द्वारा विश्व के करोड़ों-करोड़ों लोगो में बँट रहा है...

*

सतयुग की पूजा पद्धति

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

पूर्वकाल में मंदिर-मस्जिद आदि कुछ नहीं था । लोग ब्रह्मवेत्ता सद्गुरुओं को ईश्वररूप जानकर, उनका उपदेश सुनते, उनकी आज्ञा के अनुसार चलते एवं परमात्मज्ञान पा लेते थे ।

बाद में रजो-तमोगुण बढ़ गया । महापुरुषों ने देखा कि ऐरे-गैरे भी 'ब्रह्मज्ञानी' बनने का ढोंग करने लगे और इसके कारण लोग सच्चे ब्रह्मज्ञानियों पर भी शंका करने लगे इसलिए उन्होंने मूर्तियाँ लाकर रख दीं । सिर पटकते-पटकते १२ साल तप करो, पूजा-पाठ करते यात्राएँ करो तब कुछ शुद्धि होगी, किसी सच्चे आत्मज्ञानी महापुरुष को खोजने की पुण्याई होगी । फिर आत्मज्ञान मिलेगा तो लाभ होगा । जब तक ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु नहीं मिलते तब तक भगवान की सेवा-पूजा करो, तीर्थों में जाओ, कहीं नाक रगड़ो, कहीं झख मारो । जब हृदय शुद्ध होगा, भगवान को पाने की तड़प होगी, सद्गुरु की ज़रूरत पड़ेगी तब कोई गुरु मिलेंगे तो कदर होगी । मुफ़्त में गुरु मिल जायेंगे तो क्या कदर करेंगे ?

सतयुग में मूर्ति पूजा नहीं थी, त्रेता में भी नहीं थी । द्वापर-त्रेता के संगम से मूर्ति पूजा चली । एक त्रिकालज्ञ ब्रह्मवेत्ता महापुरुष कहते हैं कि : पौराणिक युग से आज तक जो भी मूर्ति के भगवान हैं वे सब ब्रह्मज्ञानियों के बेटे हैं । ये जो भी देवी-देवता हैं या भगवान हैं, सारे-के-सारे ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के मानसिक पुत्र हैं ! ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों ने समाज को उन्नत करने के लिए मन से भगवत्तत्त्व की भावना की और तदनुसार शिल्पियों ने मूर्तियों की रचना की ।

कर्षति आकर्षति इति कृष्णः । जो सभी को आकर्षित करता है उसका नाम है श्रीकृष्ण । रोम-रोम में रम रहा है इसलिए उसका नाम रखा श्रीराम । वह कल्याण करता है इसलिए उसका नाम रखा शिव । वह आद्यशक्ति है इसलिए उसको जगदंबा कहके भी पूजते हैं ।

महापुरुषों की ऊँची सूझ-बूझ और लोक मांगल्य की भावना के अनुसार मूर्तियों की रचना हुई एवं उन्होंने ध्यानावस्था में अपने परमात्म-स्वरूप में एकाकार होकर जो बोला, वह शास्त्र बन गया । जितने भी शास्त्र हैं सब ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों की समाधिभाषा हैं । ज्ञानवान् अपने आत्मानुभव में आकर जो वचन बोलते हैं, वे शास्त्र बन जाते हैं ।

गुजरात में अखा भगत नाम के एक आत्मज्ञानी महापुरुष हो गये । लोगों को जगाने के लिए उन्होंने कहा है :

सजीवाए निर्जीवा ने घड्यो,
पछी एने कहे मने कंईं दे ।
अखो तमने ई पूछे,
तमारी एक फूटी के बे ?

'सजीव (मानव) ने निर्जीव मूर्ति का निर्माण किया, फिरें उससे ही प्रार्थना करता है कि मुझे कुछ दे । अखा तुमसे पूछता है किं तुम्हारी एक आँख फूटी है कि दोनों ?'

आप सजीव हैं और मूर्ति निर्जीव है । मंदिर, मस्जिद और चर्चों ने इंसान को नहीं बनाया, इंसान ने उन्हें बनाया है ।

गुजरात के ऊँझा नामक स्थान में उमिया माता का मंदिर है । उस मंदिर का उद्घाटन था तो वहाँ मेरा जाना हुआ । सारा पटेल समाज वहाँ उपस्थित था । लोग वहाँ के एक वृद्ध 'चेयरमैन' को मेरे पास लाये एवं बोले :

''स्वामीजी ! ये साठ वर्ष से काँवर में पानी लाकर माताजी को चढ़ाते हैं ।''

लोगों ने उन्हें हार पहनाया, मेरे आशीर्वचन

दिलाये फिर मुझे विचार आया कि साठ वर्ष से कंधे पर काँवर रखकर पानी लाते हैं और माताजी को चढ़ाते हैं, अगर साठ वर्ष तो क्या साठ माह भी किसी ब्रह्मवेत्ता महापुरुष के श्रीचरणों में शांत बैठे होते तो बेड़ा पार हो गया होता।

जो माताजी को पानी नहीं चढ़ाते हैं, नास्तिक हैं उनकी अपेक्षा तो इन काका को धन्यवाद है लेकिन हमें ऐसे काका नहीं होना है। हमें तो तेजी से चलना है। वर्तमान में जिस प्रकार यात्रा के तीव्र साधन हुए, संदेश पहुँचाने के तार, टेलीफोन आदि के तीव्र साधन हुए, रसोई बनाने के तीव्र साधन हुए वैसे ही प्रभुप्राप्ति के लिए भी तीव्र साधनों का उपयोग करना पड़ेगा ताकि तीव्र गति से यात्रा करके मंज़िल तक पहुँच जायें।

मुख में पत्थर रखकर राजसी मनुष्य तप करते हैं। आखिरी समय तपस्याकाल में धृतराष्ट्र केवल पवनाहार करते थे, गांधारी केवल जलाहार करती थीं और कुंताजी माह में केवल एक ही बार भोजन करती थीं। आप भी ऐसे ही तप करो ऐसा कहने का हेतु नहीं है क्योंकि उस समय का शरीर एवं उस समय की निष्ठा आज के शरीर एवं आज की निष्ठा से बिल्कुल भिन्न थी। फिर भी कभी-कभी तो उपवास अवश्य करना चाहिए।

कभी स्वाभाविक श्वासोच्छवास को गिनते जायें तो कभी हरि के ध्यान में तल्लीन होते जायें। कभी जप करते-करते शांत होते जायें कभी स्वाध्याय करते-करते मनन-निदिध्यासन करते जायें तो कभी सेवा द्वारा अंतःकरण को पावन करते जायें।

किन्हीं ब्रह्मवेत्ता महापुरुष को खोज लें और उनकी बतायी हुई युक्तियों का अनुसरण करें तो शीघ्र ही बेड़ा पार हो जायेगा।

गुरुसेवा की भावना आपकी रग-रग में, नस-नस में, प्रत्येक हड्डी में एवं शरीर के तमाम कोषों में गहरी उतर जानी चाहिए। गुरुसेवा की भावना को उग्र बनाओ। उसका बदला अमूल्य है।
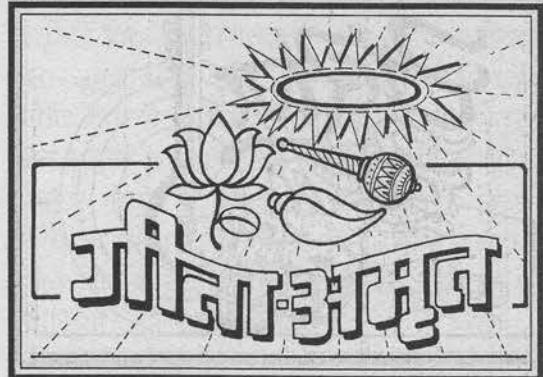
निष्काम कर्म की महिमा

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥

'जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है, वह संन्यासी तथा योगी है और केवल अग्नि का त्याग करनेवाला संन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओं का त्याग करनेवाला योगी नहीं है।' (गीता : ६.१)

केवल क्रियाओं का त्याग करनेवाला योगी नहीं है और केवल अग्नि का त्याग करनेवाला संन्यासी नहीं है वरन् कर्मफल की इच्छा का त्याग करके जो करने योग्य कर्म करता है, सुख लेने की बुद्धि से नहीं, सुख देने की बुद्धि से कर्म करता है, वही वास्तव में संन्यासी और योगी है।

जो बाहर से भीतर आये, उसे बोलते हैं आहार। जो भीतर से बाहर आये उसे बोलते हैं आनंद। जो भीतर से बाहर आये उसे बोलते हैं सुख। जो भीतर से बाहर आये उसे बोलते हैं ज्ञान।

जब सुख देने की बुद्धि से कर्तव्य कर्म करोगे, शास्त्रोक्त कर्म करोगे तो अपने अंतःकरण में शुद्ध सुख उत्पन्न होगा। आसक्तिरहित कर्म करोगे तो भीतर से आनंद प्रगट होगा, भीतर से ही ज्ञान प्रगट होगा। आसक्तिरहित कर्म ही संन्यास और योग का फल दे देंगे।

मनुस्मृति में कहा गया है :

यत्कर्म कुर्वयोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः।
तत् प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत्॥

'जो कर्म करने से अपने मन में तृप्ति और संतोष का अनुभव हो, वह कर्म प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए । जिस कर्म को करने के बाद अन्तरात्मा धिक्कारे, ग्लानि हो, घृणा हो- वह कर्म प्रयत्नपूर्वक छोड़ना चाहिए ।' (मनु. : ४-१६१)

जिन कर्मों से आत्मसुख की प्राप्ति हो, आत्मसंतोष हो, अंतरात्मा की तृप्ति हो, अन्तरात्मा का सुख उभरता हो, वे कर्म प्रयत्नपूर्वक करने चाहिए । जो कर्म शास्त्रोक्त हों, संत-अनुमोदित हों और अपने अंतरात्मा में सुख का, माधुर्य का, धन्यवाद का अहसास कराते हों, वे कर्म प्रयत्नपूर्वक करने चाहिए। जो कर्म शास्त्र, संत एवं अंतरात्मा द्वारा इनकार किये गये हों उन कर्मों को यत्नपूर्वक त्यागना चाहिए।

कर्म तो करो लेकिन कर्म की आसक्ति का, कर्म के फल का त्याग करोगे तो बुद्धि स्वच्छ और सात्त्विक होगी । स्वच्छ बुद्धि में परमात्म-विषयक जिज्ञासा होगी, फिर तो संन्यासी और योगी को जो आत्मा-परमात्मा का अनुभव होता है वही तुमको होगा और तुम मुक्तात्मा हो जाओगे ।

परमेश्वर-तत्त्व का ज्ञान पाना हो तो आसक्ति-रहित कर्म करके अपने को खोजें। 'कर्म करने से पूर्व, कर्म करते वक्त और कर्म पूरे हो जायें उस वक्त जो सबको देखनेवाला सत्-चित-आनंद स्वरूप परमात्मा है वही मेरा आत्मा है' - ऐसा चिंतन करने से बहुत लाभ होता है।

जब हम साधना करने बैठते हैं तब लगता है कि सारा जगत सपना है और चैतन्य आत्मा अपना है लेकिन कर्म करते समय हमारा मन और इंद्रियाँ आसक्ति करके हमें पुनः संसार में भटका देते हैं। इसीलिए मनु महाराज ने कहा है : ''जिन कर्मों को करने से अपने मन में तृप्ति और संतोष का अनुभव हो, वे कर्म प्रयत्नपूर्वक करने चाहिए।''

संन्यासी को आदेश है कि अग्नि को नहीं छुए, बनी-बनायी भिक्षा ग्रहण करे। अग्नि को नहीं छुआ, बनी-बनायी भिक्षा ग्रहण की और संन्यासी के कपड़े पहन लिए लेकिन यदि मन में इच्छा-वासना है तो संन्यास सिद्ध नहीं होता। इससे तो कर्म करे लेकिन इच्छा-वासनाएँ छोड़ दे तो अंतरात्मा का सुख प्रगट होता है। इसीलिए आसक्तिरहित कर्म करनेवाले को संन्यासी कहा है ।

एक वृद्ध व्यक्ति अंधेरी रात में चौराहे पर लालटेन लेकर खड़ा था। उसका भाव था कि लोगों को अंधेरे में कष्ट न हो ।

किसीने पूछा : ''बाबा ! लोगों को रोशनी मिलने से तुम्हें क्या लाभ हो रहा है ?''

वृद्ध : ''लोगों को तो मैं बाहर की रोशनी दे रहा हूँ लेकिन मुझे यह फायदा है कि मेरा अंतरात्मा संतुष्ट हो रहा है।''

जो गति योगी को, संन्यासी को मिलती है वही निष्काम कर्म करनेवाले को मिलती है ।

एक बार ज्ञानेश्वर महाराज सुबह-सुबह नदी तट पर घूमने निकले तो देखा कि एक लड़का नदी में गोते खा रहा है और पास में ही एक संन्यासी आँखें बंद करके बैठा है । ज्ञानेश्वर महाराज तुरंत नदी में कूदे, उस डूबते हुए लड़के को बाहर निकाला फिर संन्यासी को पुकारा ?

''ओ संन्यासी महाराज !''

संन्यासी ने आँखें खोलीं तो ज्ञानेश्वरजी बोले : ''क्या आपका ध्यान लगता है ?''

संन्यासी : ''ध्यान तो नहीं लगता है, मन इधर-उधर भागता है।''

''यह लड़का डूब रहा था, क्या आपको दिखाई नहीं दिया ?''

''देखा तो था लेकिन मैं ध्यान कर रहा था।''

ज्ञानेश्वर : ''फिर आप ध्यान में कैसे सफल हो सकते हो ? ईश्वर ने आपको किसीकी सेवा करने का मौका दिया था। वह आपका कर्तव्य भी था। यदि आप उस कर्तव्य का पालन करते तो ध्यान में भी मन लगता।

ईश्वर की सृष्टि, ईश्वर का बगीचा बिगड़ रहा है और आप बगीचे का आनंद लेना चाहते हो ? बगीचे का आनंद लेना है तो बगीचे को सँवारना भी पड़ता है।''

परहित के कार्य, शास्त्र-संत अनुमोदित कार्य, आसक्तिरहित कार्य मानव की योग्यताओं को

विकसित करके उसे परमात्म-ज्ञान, परमात्म-ध्यान के योग्य बनाते हैं।

जिनके नाम से रघुकुल चला एवं आगे चलकर जिनके कुल में भगवान श्रीराम प्रगट हुए, वे राजा रघु किशोर थे, तब की बात है : एक दिन वे अपने पिता के साथ वन में स्थित गुरुवर वसिष्ठ के आश्रम में गये। उस समय ब्रह्मर्षि वसिष्ठजी महाराज अपने ब्रह्मचारियों को समझा रहे थे : ''जिसने तन से अगर तप नहीं किया तो उसे भोग भी नहीं मिल सकता, मोक्ष की तो बात ही क्या है ? भोग के लिए भी तप चाहिए और मोक्ष के लिए भी तप चाहिए। इसलिए इस तन से तप करना चाहिए।''

किशोर रघु के मन में प्रश्न उठा कि : 'संन्यासी और योगी भोग-सुख का त्याग करके तप करते हैं सुख के लिए तप नहीं करते। गुरुवर कहते हैं कि भोग के लिए भी तप करना चाहिए ?' किशोर रघु ने विनयपूर्वक प्रश्न किया : ''गुरुदेव ! सुख-भोग के लिए भी तप करना चाहिए, यह बात मुझे समझ में नहीं आ रही है। बताने की कृपा करें।''

गुरुदेव : ''शरीर तभी भोग को भोग सकेगा, जब स्वस्थ होगा और स्वस्थ तभी रहेगा जब परिश्रम करेगा। तैयार सुविधाएँ मिलें और पका हुआ भोजन मिले तो वह कितने दिन भोग सकेगा ?''

एक होता है यत्नतः तप करना जो तपस्वी के लिए है, संन्यासी के लिए है, योगी के लिए है। दूसरा है सहज तप। जो ईश्वर के रास्ते जाते हैं उन्हें यत्नतः तप नहीं करना है वरन् ईश्वर के रास्ते आनेवाली कठिनाइयों को हँसते-हँसते सह लें, जो भी कष्ट और मुसीबतें आयें उन्हें हँसते-हँसते गुजरने दें और अपने मन को ईश्वर के जप-ध्यान में लगाये रखें, आसक्तिरहित कर्म में लगाये रखें, उनका वही तप हो जाता है।

तपस्वी प्रयत्नपूर्वक तप करता है तो तप में कर्त्तापन रहता है लेकिन जो स्वाभाविक सुख-दुःख आते हैं उनमें सम बुद्धि रखता है, उसे कर्त्तापन का बोझ नहीं लगता। कभी बीमार हो जाओ तो ऐसा नहीं होना चाहिए कि : 'हाय ! मैं बीमार हूँ, दुःखी हूँ, ठीक हो जाऊँ।' ऐसा करने से शायद तुम ठीक तो हो जाओ, दुःख तो मिटेगा लेकिन वह तप नहीं होगा। इसकी जगह बीमारी में भी चिंतन करें कि : 'मैं बीमार नहीं हूँ, यह शरीर का तप हो रहा है... मेरे कर्म कट रहे हैं...' इस भावना से बीमारी के कष्ट को सहते हुए उसे निवृत्त करने का यत्न करें। इससे कर्म भी कटेंगे, तपस्या भी होगी और आरोग्यता भी प्राप्त हो जायेगी। आपका मन जैसा दृढ़ संकल्प करता है, उसी प्रकार की आपको मदद मिलती है।

जब आसक्ति होगी तो स्वार्थयुक्त कर्म करने में रुचि होगी लेकिन कर्म निःस्वार्थ हों, परहित के हों, शास्त्र-संत अनुमोदित हों- इस प्रकार की समझ होगी तो श्रीकृष्ण कहते हैं : 'आसक्तिरहित कर्म करनेवाला संन्यासी है, योगी है।'

एक आदमी ने सोचा कि : '५०० रुपये दान करने हैं।' वह किसी महाराज के पास गया और बोला : ''महाराज ! ये ५०० रुपये ले लीजिये।''

महाराज : ''हम त्यागी हैं रुपयों का स्पर्श नहीं करते।''

व्यक्ति : ''आप नहीं छूते लेकिन मुझे तो दान करना है।''

महाराज : ''किसी और को दे दो।''

वह आदमी गया सिनेमा थियेटर की ओर, १०० टिकटें सिनेमा की लेकर बाँट दीं। क्या यह दान हुआ ? यह तो लोगों की और भी खाना-खराबी हुई। लोगों के तन-मन की हानि का कार्य हुआ।

दूसरे का दुःख निवृत्त हो, दूसरे का अज्ञान निवृत्त हो इस प्रकार का दान करना योग्य है। जिसका पेट पहले से ही भरा है, उसको रोटी का दान करना व्यर्थ है। अगर दान करना ही है तो भूखे को रोटी का दान करना चाहिए। प्यासे को पानी पिलाना चाहिए। राह भूले हुए को पानी की आवश्यकता नहीं हैं, उसे रास्ता दिखाना ही आपका कर्तव्य है।

भूखे को भोजन कराना एवं प्यासे को पानी पिलाना सत्कर्म है लेकिन अशांत के लिए भोजन-पानी की आवश्यकता नहीं है, अशांत के लिए तो शांति के वचन चाहिए। ऐसे ही अभक्त को भक्ति

मिले, अज्ञानी को ज्ञान मिले, निगुरा सगुरा हो जाये और सगुरा साक्षात्कार की तरफ चले, ऐसा प्रयास योग्य कर्म है।

ये योग्यकर्म भी आसक्तिरहित होकर करें। ऐसों के लिए श्रीकृष्ण कहते हैं : ''जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है, वह संन्यासी तथा योगी है।''

अतः आप अपने जीवन में जहाँ भी हों, व्यवहार में संन्यास और योग को प्रविष्ट करें। भीतर पावन रस का झरना खोलें। सदैव याद रखें- संसार में आसक्ति करने और पच मरने के लिए आपका जन्म नहीं हुआ है।

अलौकिक दुर्गम रहस्य श्रद्धावान् शिष्यों को ही प्राप्त होता है। बिना श्रद्धा के गुरुगम्य कभी हाथ नहीं लगता और उसके हाथ लगे बिना सुख-दुःख में समभाव कभी उत्पन्न हो नहीं सकता। देह के प्रति जब तक मेरापन दृढ़ रहता है तब तक द्वन्द्व की पीड़ा बड़ी भयंकर होती है लेकिन गुरु-उपदेश से जो निरभिमान हो जाते हैं उनके लिए द्वन्द्व अत्यन्त मिथ्या हो जाते हैं। जिस प्रकार स्वप्न का दारिद्रय और वैभव जाग्रत होने पर मिथ्या होता है उसी प्रकार गुरु-भक्तों के लिए स्वात्म-साक्षात्कार के कारण द्वन्द्व बाधा कभी उत्पन्न नहीं होती। बालकों के खेल में एकादशी और पारणा दोनों ही एक-सी होती हैं। इसी प्रकार गुरूपदेश के कारण सारे द्वन्द्व नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार चन्दन की सुगन्ध से बेर और बबूल के पेड़ भी चन्दन बन जाते हैं। उसी प्रकार गुरु-वचनों के अनुभव से समस्त द्वन्द्व ही आत्म-स्वरूप से ऐक्य प्राप्त कर लेते हैं। सद्गुरु ही महत् सत्संग है। उनकी संगति से शिष्य का स्वरूप बदलकर ब्रह्मरूप हो जाता है और तब द्वन्द्व निर्द्वन्द्व हो जाते हैं।

गुरु वाक्य से ही ब्रह्म को ब्रह्मत्व प्राप्त होता है। उन्हें समान बताने के लिए भिन्न तत्त्व तनिक भी नजर नहीं आता। देव के प्रति जैसा भाव रखा जाता है वैसा ही भाव सद्गुरु-चरणों में भी रखना चाहिए क्योंकि गुरु और देव में भिन्नता बिल्कुल नहीं है। अतः देव की पूजा करने से गुरु को संतोष होता है तथा गुरु की पूजा करने से देव (भगवान) को संतोष होता है। नाम दो होने पर भी आनन्द के कारण वे एक ही स्वरूप में रहते हैं। सोना और कंगन नाम के लिए दो होने पर भी उनमें सोना एक ही होता है। इस प्रकार

गुरु और ब्रह्म में भेद-भाव नहीं होता। ऐसे सद्गुरु का भजन तन, मन, धन से और निष्कपट भाव से करना चाहिए। अपना सर्वस्व श्री गुरु के चरणों में अर्पण करना चाहिए। जो संत चरणों में रँग जाता है उसको आत्म-प्राप्ति सहज में हो जाती है। सच्चे संतों की कृपा-सम्पादन करने के लिए बड़ी उत्कण्ठापूर्वक प्रयत्न करना चाहिए।

जिस प्रकार ईख की मिठास का बकरी को कोई ज्ञान नहीं होता वह तो बेचारी पाला ही कुतरने लगती है, इसी प्रकार हरि भक्ति की मिठास मालूम न होने के कारण ही बेचारे निगुरे लोग विषयों के लम्पट ही हुआ करते हैं।

रीछ अपनी गुरगुराहट में जब मस्त होता है तो वह रणभेरी भी नहीं सुन सकता, उसी प्रकार दुष्ट लोग भी हरि का गुणानुवाद न सुनकर बड़े प्रेम से विषयासक्ति की गप्पों में लगे रहते हैं। इसीलिए वे अति मूर्ख, उद्धत व सर्वकाल सुस्त रहते हुए विषयान्ध होकर विषयों के प्रति लुब्ध हुए रहते हैं।

मैथुन, मांस भक्षण, तथा सुरापान ये विषय-विकार के तीन प्रकार हैं, इन तीनों का त्याग करना चाहिए।

जहाँ धर्म होता है वहीं शुद्ध ज्ञान भी होता है। मूलतः जब देह ही अशाश्वत है तो उसके भोग सत्य कैसे हो सकते हैं ?

शरणागतों के लिए अत्यन्त आश्रयभूत ऐसे उन महापुरुष के चरणों की, जिनका सनकादिक भी ध्यान व अभिनन्दन करते हैं - अगाध महिमा का वर्णन करने में वेदों को भी मौन धारण करना पड़ता है। ब्रह्मदेव व शंकर भी स्तवन करते हुए तटस्थ हो जाते हैं।

जो भक्त हरि के चरणों में रँग जाता है, वह किसी का भी ऋणी नहीं रहता। जिस प्रकार पारस पत्थर का स्पर्श पाते ही लौह खण्ड अपनी कालिमा से मुक्त हो जाता है। गंगा में स्नान करने पर जिस तरह पापों से मुक्ति मिल जाती है, इसी तरह हरि-चरणों में वृत्ति के रंग जाने पर भगवद्भक्त ऋणत्रय से मुक्त हो जाता है। भावपूर्वक भक्ति करने से सारे 'पितरों' का उद्धार हो जाता है।

[*'श्री एकनाथी भागवत' से*]

गुरि मिलिऐ हरि मेला होई

गुरि मिलिऐ हरि मेला होई। आपे मेलि मिलावै सोई।
मेरा प्रबु सभ बिधि आपे जाणै। हुकमे मेले सबदि पछाणै।
सतिगुर कै भइ भ्रभु भऊ जाइ। भै राचै सच संगि समाइ ॥१॥
गुरि मिलिऐ हरि मनि वसै सुभाइ। मेरा प्रभु भारा कीमति नही पाइ।
सबदि सालाहै अंतु न पारावारु। मेरा प्रबु बखसे बखसणहारु ॥२॥
गुरि मिलिऐ सभ मति बुधि होइ। मनि निरमलि वसै सचु सोइ।
साचि वसिऐ साची सभ कार। ऊतम करणी सबद बीचार ॥३॥
गुर ते साची सेवा होइ। गुरमुखि नामु पछाणै कोइ।
जीवै दाता देवणहारु। नानक हरिनामे लगै पिआरु ॥४॥

यदि गुरु मिल जायें तो परमात्मा के साथ मिलाप हो जाता है, वह परमात्मा आप ही (जीव को गुरु के साथ) मिलाकर (अपने चरणों में) मिला लेता है। प्यारा प्रभु आप ही (जीवों को अपने चरणों में मिलाने के) सारे तरीके जानता है। (जिस मनुष्य को परमात्मा अपने) हुक्म अनुसार (गुरु के साथ) मिलाता है, वह मनुष्य गुरु के उपदेश द्वारा परमात्मा के साथ मेल कर लेता है। गुरु के भय में रहने से (संसार का) भय दूर हो जाता है। जो मनुष्य (गुरु के) भय में प्रसन्न रहता है, वह सदा सत्यस्वरूप परमात्मा के रंग में समाया रहता है ॥१॥ यदि गुरु मिल जायें तो परमात्मा (भी अपनी) प्रेम-रुचि के कारण (मनुष्य के) अपने मन में आ बसता है। प्यारा प्रभु अनन्त-गुणों का स्वामी है, कोई जीव उसका मूल्यांकन नहीं कर सकता। जो मनुष्य गुरु के उपदेश से जुड़कर उस परमात्मा की गुणस्तुति करता है, जिसके गुणों का रहस्य नहीं पाया जा सकता, जिसके अस्तित्व का ओर-छोर नहीं मिल सकता, क्षमा करनेवाला प्रभु (उसके समस्त दोष) क्षमा कर देता है ॥२॥ यदि गुरु मिल जायें (तो मनुष्य के भीतर) सद्बुद्धि पैदा हो जाती है, (मनुष्य के) पवित्र मन में वह सत्यस्वरूप प्रभु प्रकट हो जाता है। यदि सत्यस्वरूप प्रभु (जीव के मन में) आ बसे तो सत्यस्वरूप परमात्मा की गुणस्तुति उसका नित्यप्रति का काम-काज हो जाता है, उसके कर्म श्रेष्ठ हो जाते हैं, गुरु के शब्द का विचार उसके मन में टिका रहता है ॥३॥ सत्यस्वरूप प्रभु की सेवा-भक्ति गुरु से ही मिलती है, गुरु के सम्मुख रहकर ही कोई मनुष्य प्रभु के नाम से गहरा सम्बन्ध बनाता है। हे नानक! जिस मनुष्य का प्रेम हरि के नाम से परिपक्व हो जाता है, (उसे विश्वास हो जाता है कि सब) देने में समर्थ दाता-प्रभु (उसके साथ) जीता-जागता स्थित है ॥४॥

[*'श्री गुरुग्रंथ साहिब' से*]

"पहले मैंने खूब पूजा उपासना की थी। भगवान शिव की पूजा के बिना कुछ खाता-पीता नहीं था। प.पू. सद्गुरुदेव श्री लीलाशाहजी बापू के पास गया तब भी भगवान शंकर का बाण और पूजा की सामग्री साथ में लेकर गया था। मैं लकड़ियाँ भी धोकर जलाऊँ, ऐसी पवित्रता को माननेवाला था। फिर भी जबतक परम पवित्र आत्मज्ञान नहीं हुआ तब तक यह सब पवित्रता उपाधि थी। अब तो... अब क्या कहूँ ?"
- पूज्यश्री

आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'ईश्वर की ओर' से संकलित। ईश्वर प्राप्ति के इच्छुकों को इस किताब का कम-से-कम ९ बार पठन-चिंतन-मनन अवश्य करना चाहिए। आप करके देखिये।
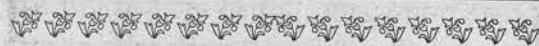
गुरु चरणों में शत कोटि नमन !

हे पूज्यपाद ! हे गुरुश्रेष्ठ ! हे कर्मनिष्ठ ! शत शत वंदन।
तव चरण कमल में शिष्य, हृदय से करता है शत कोटि नमन॥
इस विषय भोग के प्रांगण में, कैसे जीवन निर्वाह करें ?
कैसे निज उर में प्रभु प्रेम, निर्मलता नित्य प्रवाह करें ?
कैसे आराध्य का ध्यान धरें, सत्कर्मों का अनुपालन हो।
दुष्कर्मों से हों विलग, भाव में प्रेम सुधा का पालन हो॥
इसका हमको सद्ज्ञान मिला, हे ज्ञान पुंज ! है तुम्हें नमन।
हे पूज्यपाद ! हे गुरुश्रेष्ठ ! हे कर्मनिष्ठ ! शत शत वंदन॥
तव चरण-कमल में शिष्य, हृदय से करता है शत कोटि नमन।
अज्ञान तमस में भटक रहे जीवों को ज्ञान प्रकाश मिला॥
है गुरुकृपा से अंतस् में उज्ज्वलता का आभास हुआ।
सच्चिदानंद श्रीराम स्वरूप के हम प्रतिपल अनुरागी हों॥
इस अखिल विश्व में सभी स्वजन मानवता के सहभागी हों।
हो मन में निर्मल भाव उदय, सत्कर्म पुण्य का करें वरण॥
हे पूज्यपाद ! हे गुरुश्रेष्ठ ! हे कर्मनिष्ठ ! शत शत वंदन।
तव चरण कमल में शिष्य, हृदय से करता है शत कोटि नमन॥

- प्रभात बख्शी, डोंगर गाँव, जि. राजनांद गाँव (म. प्र.).

कब सुमिरोगे राम ?

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

अमदावाद की घटित घटना है :

विक्रम संवत् १७वीं सदी में कर्णावती (अमदावाद) में युवा राजा पुष्पसेन का राज्य था। जब उसकी सवारी निकलती तो बाजारों में लोग कतारबंद खड़े रहकर उसके दर्शन करते। जहाँ कहीं सुन्दर युवती पर उसकी नजर पड़ती तब मंत्री को इशारा मिल जाता। रात्रि को वह सुन्दरी महल में पहुँचायी जाती। फिर भले किसीकी कन्या हो अथवा दुल्हन !

एक गरीब कन्या, जिसके पिता का स्वर्गवास हो गया था। उसकी माँ चक्की चलाकर अपना और बेटी का पेट पालती थी। वह स्वयं भी कथा सुनती और अपनी पुत्री को भी सुनाती। हक और परिश्रम की कमाई, एकादशी का व्रत और भगवन्नाम जप, इन सबके कारण १६ वर्षीय कन्या का शरीर बड़ा सुगठित था और रूप-लावण्य का तो मानो, अंबार थी ! उसका नाम था सुयशा।

सबके साथ सुयशा भी पुष्पसेन को देखने गयी। सुयशा का ओज-तेज और रूप-लावण्य देखकर पुष्पसेन ने अपने मंत्री को इशारा किया। मंत्री ने कहा : "जो आज्ञा।"

मंत्री ने जाँच करवायी। पता चला कि पिता है नहीं, माँ गरीब, विधवा है। उसने सोचा : 'यह काम तो सरलता से हो जायेगा।'

मंत्री ने युक्ति से सुयशा की माँ को महल में नौकरी दिलवा दी। मंत्री ने राजा से कहा :

''राजन् ! लड़की को अकेले क्या लाना ? उसकी माँ के साथ ले आयें । महल के पास एक कमरे में रहेंगी, झाड़ू-बुहारी करेंगी, आटा पीसेंगी। उनको केवल खाना देना है ।''

इसके बाद उस लड़की को महल में लाने की युक्तियाँ खोजी जाने लगीं । उसको बेशर्मी के वस्त्र दिये गये । जो वस्त्र कुकर्म करने के लिए वेश्याओं को पहनकर तैयार रहना होता है, मंत्री ने ऐसे वस्त्र भेजे और कहलवाया :

''राजा साहब ने कहा है : सुयशा ! ये वस्त्र पहनकर आओ । सुना है कि तुम भजन अच्छा गाती हो अतः आकर हमारा मनोरंजन करो ।''

यह सुनकर सुयशा को धक्का लगा ! जो बूढ़ी दासी थी और ऐसे कुकर्मों में साथ देती थी, उसने सुयशा को समझाया कि : 'ये तो राजाधिराज हैं, पुष्पसेन महाराज हैं । महाराज के महल में जाना तेरे लिए सौभाग्य की बात है ।' इस तरह उसने और भी बातें कहकर सुयशा को पटाया ।

सुयशा कैसे कहती कि : 'मैं भजन गाना नहीं जानती हूँ । मैं नहीं आऊँगी...' राज्य में रहती है और महल के अंदर माँ काम करती है । माँ ने भी कहा : ''बेटी जा । यह वृद्धा कहती है तो जा ।''

सुयशा ने कहा : ''ठीक है । लेकिन कैसे भी करके ये बेशर्मी के वस्त्र पहनकर तो नहीं जाऊँगी ।''

सुयशा सीधे-सादे वस्त्र पहनकर राजमहल में गयी । उसे देखकर पुष्पसेन को धक्का लगा कि : 'इसने मेरे ऐश करनेवाले कपड़े नहीं पहने ?' दासी ने कहा : ''दूसरी बार समझा लूँगी, इस बार नहीं मानी ।''

सुयशा का सुयश बाद में फैलेगा, अभी तो अधर्म का पहाड़ गिर रहा था... धर्म की नन्हीं-सी मोमबत्ती पर अधर्म का पहाड़... ! एक तरफ राज्य सत्ता की आँधी है तो दूसरी तरफ धर्म सत्ता की लौ ! जैसे रावण की राजसत्ता और विभीषण की धर्मसत्ता, दुर्योधन की राजसत्ता और विदुर की धर्मसत्ता, हिरण्यकशिपु की राजसत्ता का पहाड़ और प्रह्लाद की धर्मसत्ता ! धर्मसत्ता और राजसत्ता टकरायी । राजसत्ता चकनाचूर हो गयी और धर्मसत्ता की जयजयकार हुई और हो रही है ! विक्रम राणा और मीरा... मीरा की धर्म में दृढ़ता थी । राणा राजसत्ता के बल पर मीरा पर हावी होना चाहता था । दोनों टकराये और विक्रम राणा मीरा के चरणों में गिरा !

धर्मसत्ता दिखती तो सीधी-सादी है लेकिन उसकी नींव पाताल में होती है और सनातन सत्य से जुड़ी होती है । जबकि राजसत्ता दिखने में बड़ी आडम्बरवाली होती है लेकिन भीतर ढोल की पोल की तरह होती है ।

राजदरबार के सेवक ने कहा : ''राजाधिराज महाराज पुष्पसेन की जय हो ! हो जाये गाना शुरू ।''

पुष्पसेन : ''आज तो हम केवल सुयशा का गाना सुनेंगे ।''

दासी ने कहा : ''सुयशा ! गाओ, राजा स्वयं कह रहे हैं ।''

राजा के साथी भी उस सुयशा का सौन्दर्य नेत्रों के द्वारा पीने लगे और राजा के हृदय में काम-विकार पनपने लगा । सुयशा राजा के दिये वस्त्र पहनकर नहीं आयी फिर भी उसके शरीर का गठन और ओज-तेज बड़ा सुन्दर लग रहा था । राजा भी सुयशा को निहारे जा रहा था ।

कन्या सुयशा ने मन-ही-मन प्रभु से प्रार्थना की : 'प्रभु ! अब तुम्हीं रक्षा करना ।'

आपको भी जब धर्म और अधर्म के बीच निर्णय करना पड़े तो धर्म के अधिष्ठानस्वरूप परमात्मा की शरण लेना । वे आपका मंगल ही करते हैं । उन्हीं से पूछना कि : 'अब मैं क्या करूँ ?' अधर्म के आगे झुकना मत । परमात्मा की शरण जाना ।

दासी ने सुयशा को कहा : ''गाओ, संकोच न करो, देर न करो । राजा नाराज होंगे, गाओ ।''

परमात्मा का स्मरण करके सुयशा ने एक राग छेड़ा :

कब सुमिरोगे राम ? साधो ! कब सुमिरोगे राम ?
अब तुम कब सुमिरोगे राम ?
बालपन सब खेल गँवायो, यौवन में काम ।
साधो ! कब सुमिरोगे राम ? कब सुमिरोगे राम ?

पुष्पसेन के मुँह पर मानो, थप्पड़ लगा ।

सुयशा ने आगे गाया :

हाथ पाँव जब कंपन लागे, निकल जायेंगे प्राण।
कब सुमिरोगे राम ? साधो ! कब सुमिरोगे राम ?
झूठी काया झूठी माया, आखिर मौत निशान।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जीव दो दिन का मेहमान।
कब सुमिरोगे राम ? साधो ! कब सुमिरोगे राम ?

भावयुक्त भजन से सुयशा का हृदय तो रामरस से सराबोर हो गया लेकिन पुष्पसेन के रंग में भंग पड़ गया। वह हाथ मसलता ही रह गया। बोला : 'ठीक है फिर देखता हूँ।'

सुयशा ने विदा ली। पुष्पसेन ने मंत्रियों से सलाह ली और उपाय खोज लिया कि : 'अब होली आ रही है उस होलिकोत्सव में इसको बुलाकर इसके सौन्दर्य का पान करेंगे।'

राजा ने होली पर सुयशा को फिर से वस्त्र भिजवाये और दासी से कहा : ''कैसे भी करके सुयशा को यही वस्त्र पहनाकर लाना है।''

दासी ने बीसों ऊँगलियों का जोर लगाया। माँ ने भी कहा : ''बेटी ! भगवान तेरी रक्षा करेंगे। मुझे विश्वास है कि तू नीच कर्म करनेवाली लड़कियों जैसा न करेगी। तू भगवान की, गुरु की स्मृति रखना। भगवान तेरा कल्याण करें।''

महल में जाते समय इस बार सुयशा ने कपड़े तो पहन लिए लेकिन लाज ढाँकने के लिए ऊपर एक मोटी शाल ओढ़ ली। उसे देखकर पुष्पसेन को धक्का तो लगा लेकिन यह भी हुआ कि : 'चलो, कपड़े तो मेरे पहनकर आयी है।' राजा ऐसी-वैसी युवतियों से होली खेलते-खेलते सुयशा की ओर आया और उसकी शाल खींची। 'हे राम' करके सुयशा आवाज करती हुई भागी। भागते-भागते माँ की गोद में आ गिरी। ''माँ, माँ ! मेरी इज्जत खतरे में है। जो प्रजा का पालक है वही मेरे धर्म को नष्ट करना चाहता है।''

माँ : ''बेटी ! आग लगे इस नौकरी को।''

माँ और बेटी शोक मना रहे हैं। इधर राजा बौखला गया कि : 'मेरा अपमान... ! मैं देखता हूँ अब वह कैसे जीवित रहती है ?' उसने अपने एक खूँखार आदमी कालू मियाँ को बुलवाया और कहा : ''कालू ! तूझे स्वर्ग की उस परी सुयशा का खात्मा करना है। आजतक तुझे जिस-जिस व्यक्ति को खत्म करने को कहा है, तू करके आया है। यह तो तेरे आगे मच्छर है मच्छर ! कालू ! तू मेरा खास आदमी है। मैं तेरा मुँह मोतियों से भर दूँगा। कैसे भी करके सुयशा को उसके राम के पास पहुँचा दे।''

कालू ने सोचा : 'उसे कहाँ पर मार देना ठीक होगा ?... रोज प्रभात के अंधेरे में साबरमती नदी में स्नान करने जाती है... बस, नदी में गला दबोचा और काम खत्म... 'जय साबरमती' कर देंगे।'

कालू के लिए तो बाँयें हाथ का खेल था लेकिन सुयशा का इष्ट भी मजबूत था। जब व्यक्ति का इष्ट मजबूत होता है तो उसका अनिष्ट नहीं हो सकता।

मैं सबको सलाह देता हूँ कि आप जप और व्रत करके अपना इष्ट इतना मजबूत करो कि बड़ी-से-बड़ी राजसत्ता भी आपका अनिष्ट न कर सके। अनिष्ट करनेवाले के छक्के छूट जायें और वे भी आपके इष्ट के चरणों में आ जायें... ऐसी शक्ति आपके पास है।

कालू सोचता है : 'प्रभात के अंधेरे में साबरमती के किनारे... जरा-सा गला दबोचना है, बस। छुरा मारने की जरूरत ही नहीं है। अगर चिल्लाई और जरूरत पड़ी तो गले में जरा-सा छुरा भोंककर 'जय साबरमती' करके रवाना कर दूँगा। जब राजा अपना है तो पुलिस की ऐसी-तैसी... पुलिस क्या कर सकती है ? पुलिस के अधिकारी तो जानते हैं कि राजा का आदमी है।'

कालू ने उसके आने-जाने का समय देखा। वह एक पेड़ की ओट में छुपकर खड़ा हो गया। ज्यों-ही सुयशा आयी और कालू ने झपटना चाहा त्यों ही उसको एक की जगह पर दो सुयशा दिखाई दीं। 'कौन-सी सच्ची ? ये क्या ? दो कैसे ? तीन दिन से सारा सर्वे किया आज दो एक साथ ! खैर, देखता हूँ, क्या बात है ? अभी तो दोनों को नहाने दो...' नहाकर वापस जाते समय उसे एक ही दिखी तब कालू हाथ मसलता है कि 'वह मेरा भ्रम था।'

वह ऐसा सोचकर जहाँ शिवलिंग था उसी के पासवाले पेड़ पर चढ़ गया कि : 'वह यहाँ आयेगी अपने बाप को पानी चढ़ाने... तब 'या अल्लाह' करके उस पर कूदूँगा और उसका काम-तमाम कर दूँगा।'

उस पेड़ से लगा हुआ बिलिपत्र का भी एक पेड़ था। सुयशा साबरमती में नहाकर शिवलिंग पर पानी चढ़ाने को आयी। शिवलिंग के आसपास साफ सफाई की। ऊपर कालू की हलचल से दो-चार बिलिपत्र गिर पड़े। सुयशा बोली : '' हे प्रभु ! हे महादेव ! सुबह-सुबह ये बिलिपत्र जिस निमित्त से गिरे हैं, आज के स्नान और दर्शन का फल मैं उसके कल्याण के निमित्त अर्पण करती हूँ। मुझे आपका सुमिरण करके संसार की चीज नहीं पानी है, मुझे तो केवल आपकी भक्ति ही पानी है।''

सुयशा का संकल्प और उस क्रूर-कातिल के हृदय को बदलने की भगवान की अनोखी लीला !

कालू छलाँग मारकर उतरा तो सही लेकिन गला दबोचने के लिए नहीं। कालू ने कहा : ''लड़की ! पुष्पसेन ने तेरी हत्या करने का काम मुझे सौंपा था। मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूँ कि मैं तेरी हत्या के लिए छुरा तैयार करके आया था लेकिन तू... अनदेखे घातक का भी कल्याण करना चाहती है ! ऐसी हिन्दू कन्या को मारकर मैं खुदा को क्या मुँह दिखाऊँगा ? इसलिए आज से तू मेरी बहन है। तू तेरे भैया की बात मान और यहाँ से भाग जा। इससे तेरी भी रक्षा होगी और मेरी भीं। जा, ये भोलेबाबा तेरी रक्षा करेंगे। जिन भोलेबाबा को दो बिलिपत्र चढ़ाने से मेरा दिल बदला है वे ही भोलेबाबा तेरी रक्षा करेंगे, जा, जल्दी भाग जा...''

सुयशा को कालू मियाँ के द्वारा मानो, उसका इष्ट ही कुछ प्रेरणा दे रहा था। सुयशा भागती-भागती बहुत दूर निकल गयी।

जब कालू को हुआ कि 'अब यह नहीं लौटेगी...' तब वह नाटक करता हुआ राजा के पास पहुँचा : ''राजन् ! आपका काम हो गया। वह तो मच्छर थी... जरा सा गला दबाते ही 'में ऽऽऽ' करती रवाना हो गयी।''

राजा ने कालू को ढेर सारी अशर्फियाँ दीं। कालू उन्हें लेकर विधवा के पास गया और उसको सारी घटना बताते हुए कहा : ''माँ ! मैंने तेरी बेटी को अपनी बहन माना है। मैं क्रूर, कामी, पापी था लेकिन उसने मेरा दिल बदल दिया। अब तू नाटक कर की 'हाय, मेरी बेटी मर गयी... मर गयी...' इससे तू भी बचेगी, तेरी बेटी भी बचेगी और मैं भी बचूँगा।

तेरी बेटी की इज्जत लूटने का षड़यंत्र था, उसमें तेरी बेटी नहीं फँसी तो उसकी हत्या करने का काम मुझे सौंपा था। तेरी बेटी ने महादेव से प्रार्थना की कि 'जिस निमित्त ये बिलिपत्र गिरे हैं उसका भी कल्याण हो, मंगल हो।' माँ ! मेरा दिल बदल गया है। तेरी बेटी मेरी बहन है। यह तेरा खूँखार बेटा तुझे प्रार्थना करता है कि तू नाटक कर ले : 'हाय रे ऽऽऽ ! मेरी बेटी मर गयी। वह अब मुझे नहीं मिलेगी, नदी में डूब गयी...' ऐसा करके तू भी यहाँ से भाग जा।''

सुयशा की माँ भी भाग निकली। उस कामी राजा को हुआ कि 'मेरे राज्य की एक लड़की... मेरी अवज्ञा करे ! अच्छा हुआ मर गयी ! उसकी माँ भी अब ठोकरें खाती रहेगी... अब सुमरती रहे वही राम ! **कब सुमिरोगे राम ? साधो ! कब सुमिरोगे राम ? झूठी काया झूठी माया आखिर मौत निशान ! कब सुमिरोगे राम ? साधो ! कब सुमिरोगे राम ? हा हा हा हा ऽऽऽ...**'

मजाक-मजाक में गाते-गाते भी यह भजन उसके अचेतन मन में गहरा उतर गया... कब सुमिरोगे राम ?

उधर सुयशा को भागते-भागते रास्ते में माँ काली का एक छोटा-सा मंदिर मिला। उसने मंदिर में जाकर प्रणाम किया। वहाँ की पुजारिन गौतमी ने देखा कि 'क्या रूप है ? क्या सौन्दर्य है और कितनी नम्रता।' उसने पूछा : ''बेटी ! कहाँ से आयी हो ?''

सुयशा ने देखा कि एक माँ तो छूटी, अब दूसरी माँ बड़े प्यार से पूछ रही है... सुयशा रो पड़ी :

''मेरा कोई नहीं है। अपने प्राण बचाने के लिए मुझे भागना पड़ा।''

गौतमी : ''ओ हो ऽऽऽ... मुझे संतान नहीं थी। मेरे भोलेबाबा ने, मेरी काली माँ ने मेरे घर १६ वर्ष की पुत्री भेज दी।'' बेटी... बेटी ! करके गौतमी ने सुयशा को गले लगा लिया और अपने पति कैलाशनाथ को बताया कि : ''आज हमें भोलेनाथ ने १६ वर्ष की सुंदरी कन्या दी है। कितनी पवित्र है। कितनी भक्ति-भाव वाली है।''

कैलाशनाथ : ''गौतमी ! पुत्री की तरह इसका लालन-पालन करना, इसकी रक्षा करना। अगर इसकी मर्जी होगी तो इसका विवाह करेंगे नहीं तो यहीं रहकर भजन करे।''

जो भगवान का भजन करते हैं उनको विघ्न डालने से पाप लगता है।

सुयशा वहीं रहने लगी। वहाँ एक साधु आता था। साधु भी बड़ा विचित्र था। लोग उसे 'पागलबाबा' कहते थे। पागलबाबा ने कन्या को देखा तो बोल पड़े : ''हूँऽऽऽ...''

गौतमी घबरायी कि : 'एक शिकंजे से निकलकर कहीं दूसरे में...?' स्त्री का सबसे बड़ा शत्रु है उसका सौन्दर्य, दूसरा है उसकी असावधानी। उसका साथी है श्रृंगार। सुयशा श्रृंगार तो करती नहीं थी, असावधान भी नहीं थी लेकिन सुन्दर थी। 'पागलबाबा कहीं उसे फँसा न दे... हे भगवान ! इसकी रक्षा करना।'

गौतमी ने अपने पति को बुलाकर कहा :

''देखो, ये बाबा बार-बार अपनी बेटी की तरफ देख रहा है।''

कैलाशनाथ ने भी देखा। बाबा ने लड़की को बुलाकर पूछा : ''क्या नाम है ?''

''सुयशा।''

''बहुत सुंदर हो, बड़ी खूबसूरत हो।''

पुजारिन और पुजारी घबराये।

बाबा ने फिर कहा : ''बड़ी खूबसूरत है।''

कैलाशनाथ : ''महाराज ! क्या है ?''

''बड़ी खूबसूरत है।''

''महाराज आप तो संत आदमी हैं।''

''तभी तो कहता हूँ कि बड़ी खूबसूरत है, बड़ी होनहार है। मेरी होगी तू ?''

पुजारिन-पुजारी और घबराये कि : 'बाबा क्या कह रहे हैं ? पागल बाबा कभी कुछ कहते हैं वह सत्य भी हो जाता है। इनसे बचकर रहना चाहिए। क्या पता कहीं...'

कैलाशनाथ : ''महाराज ! क्या बोल रहे हैं।''

बाबा ने सुयशा से फिर पूछा : ''तू मेरी होगी ?''

सुयशा : ''बाबा मैं समझी नहीं।''

''तू मेरी साधिका बनेगी ? मेरे रास्ते चलेगी ?''

''कौन-सा रास्ता ?''

''अभी दिखाता हूँ। माँ के सामने एकटक देख... माँ ! तेरे रास्ते ले जा रहा हूँ, चलती नहीं है तो तू समझा माँ, माँ !''

लड़की को हुआ कि 'ये सचमुच में पागल हैं।'

पागलबाबा : ''माँ ! यह कितनी खूबसूरत है और मेरे रास्ते नहीं आती। क्या नहीं आयेगी ? चल !''

'चल' करके दृष्टि से ही लड़की पर शक्तिपात कर दिया। सुयशा के शरीर में स्पंदन होने लगा, हास्य आदि अष्टसात्त्विक भाव उभरने लगे।

पागलबाबा ने कैलाशनाथ और गौतमी से कहा : ''यह बड़ी खूबसूरत आत्मा है। इसके बाह्य सौन्दर्य पर राजा मोहित हुआ। यह प्राण बचाकर आयी है और बच पायी है। तुम्हारी बेटी है तो मेरी भी तो बेटी है। तुम चिन्ता न करो। इसको घर पर अलग कमरे में रहने दो। उस कमरे में और कोई न जाये। इसकी थोड़ी साधना होने दो फिर देखो क्या-क्या होता है ? इसकी सुषुप्त शक्तियों को जगने दो। बाहर से पागल दिखता हूँ लेकिन 'गल' को पाकर घूमता हूँ, बच्चे।''

''महाराज ! आप इतने सामर्थ्य के धनी है यह हमें पता न था। निगाह मात्र से आपने संप्रेक्षण शक्ति का संचार कर दिया।''

अब तो सुयशा का ध्यान लगने लगा। कभी हँसती है, कभी रोती है। कभी दिव्य अनुभव होते हैं। कभी प्रकाश दिखता है, कभी अजपा-जाप चलता है कभी प्राणायाम से नाड़ी शोधन होता है। कुछ ही दिनों में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर केन्द्र जाग्रत हो गये।

मूलाधार केन्द्र जाग्रत हो तो काम राम में बदलता है, क्रोध क्षमा में बदलता है, भय निर्भयता में बदलता है, घृणा प्रेम में बदलती है। स्वधिष्ठान केन्द्र जाग्रत होता है तो कई सिद्धियाँ आती है। मणिपुर केन्द्र जाग्रत हो तो अनपढ़े, अनसुने शास्त्र को जरा-सा देखें तो उस पर व्याख्या करने का सामर्थ्य आ जाता है।

आपके ये सभी केन्द्र अभी सुषुप्त हैं। अगर जग जायें तो आपके जीवन में भी ये चमक आ

सकती है। हम स्कूलीविद्या तो केवल तीन 'क्लास' पढ़े हैं लेकिन ये केन्द्र खुलने के बाद देखो, लाखों-करोड़ों लोग सत्संग सुन रहे हैं। इन केन्द्रों में बड़ा खजाना भरा पड़ा है।

इस तरह दिन बीते... सप्ताह बीते... महीने बीते। सुयशा की साधना बढ़ती गयी... अब तो वह बोलती है तो लोगों के हृदयों को शांति मिलती है। सुयशा का यश फैला... यश फैलते-फैलते साबरमती के जिस पार से वह आयी थी, उस पार पहुँचा। लोग आते-जाते रहे... एक दिन कालू मियाँ ने पूछा : ''आप लोग इधर से उस पार जाते हो, एक-दो दिन के बाद आते हो क्या बात है ?''

लोगों ने बताया : ''माँ भद्रकाली का मंदिर है, शिवजी का मंदिर है। पागलबाबा ने किसी लड़की को कहा : 'तू तो बहुत सुन्दर है, बहुत सुन्दर है ! बाहर का सौन्दर्य नहीं, अंदर से सुन्दर है, संयमी है।' उस लड़की पर कृपा कर दी ! अब वह जो बोलती है उसे सुनकर हमें बड़ी शांति मिलती है, बड़ा आनंद मिलता हैं।''

''अच्छा, ऐसी लड़की है ?''

''उसको लड़की-लड़की मत कहो कालू मियाँ ! लोग उसको 'माताजी' कहते हैं। पुजारिन और पुजारी भी उसको 'माताजी-माताजी' कहते हैं। क्या पता कहाँ से वह स्वर्ग की देवी आयी है ?''

''अच्छा, तो अपन भी चलते हैं।''

कालू मियाँ ने आकर देखा तो... 'जिस माताजी को लोग मत्था टेक रहे हैं वह वही 'सुयशा' है जिसको मारने के लिए मैं गया था और जिसने मेरा हृदय परिवर्तित कर दिया था।'

जानते हुए भी अनजान होकर रहा, कालू मियाँ के हृदय को बड़ी शांति मिली।

इधर पुष्पसेन को मानसिक खिन्नता, अशांति और उद्वेग हो गया।

भक्त को कोई सताता है तो उसका पुण्य नष्ट हो जाता है, इष्ट कमजोर हो जाता है और देर-सबेर उसका अनिष्ट होना शुरू हो जाता है।

संत सताये तीनों जाये तेज, बल और वंश।

पुष्पसेन को मस्तिष्क का बुखार आ गया। उसके दिमाग में सुयशा की वे ही पंक्तियाँ घूमने लगी :

कब सुमिरोगे राम ? साधो ! कब सुमिरोगे राम...

उन पंक्तियों को गाते-गाते वह रो पड़ा। हकीम, वैद्य सबने हाथ धो डाले और कहा :

''राजन् ! अब हमारे वश की बात नहीं है।''

कालू मियाँ को हुआ : 'यह चोट जहाँ से लगी है वहीं से ठीक हो सकती है।' कालू मिलने गया और पूछा : ''राजन् ! क्या बात है ?''

''कालू ! कालू ! वह स्वर्ग की परी कितना सुंदर गाती थी। मैंने उसकी हत्या करवा दी। मैं अब किसको बताऊँ ? कालू ! अब मैं ठीक नहीं हो सकता हूँ। कालू ! मेरे से बहुत बड़ी गलती हो गयी !''

''राजन् ! अगर आप ठीक हो जायें तो !''

''अब नहीं हो सकता। मैंने उसकी हत्या करवा दी है, कालू ! उसने कितनी सुंदर बात कही थी कालूऽऽ !

झूठी काया झूठी माया आखिर मौत निशान !
कहत 'कबीर' सुनो भई साधो, जीव दो दिन का मेहमान।
कब सुमिरोगे राम ? साधो ! कब सुमिरोगे राम ?

और मैंने उसकी हत्या करवा दी। कालू ! मेरा दिल जल रहा है। कर्म करते समय पता नहीं चलता कालू ! बाद में अंदर की लानत से जीव तप मरता है। कर्म करते समय यदि यह विचार किया होता तो ऐसा नहीं होता। कालू ! मैंने कितने पाप किये हैं।''

कालू का हृदय पसीजा कि 'इस राजा को अगर उस देवी की कृपा मिल जाये तो ठीक हो सकता है। वैसे यह राज्य तो अच्छा चलाना जानता है, दबंग है। पापकर्म के कारण इसको जो दोष लगा है वह अगर धुल जाये तो...'

कालू बोला : ''राजन् ! अगर वह लड़की कहीं मिल जाये तो ?''

''कैसे मिलेगी ?''

''जीवनदान मिले तो मैं बताऊँ। अब वह लड़की, लड़की नहीं रही। पता नहीं, साबरमती माता ने उसको कैसे गोद में ले लिया और वह जोगन बन गयी है। लोग उसके कदमों में अपना सिर झुकाते हैं।''

''हैं... क्या बोलता है ? जोगन बन गयी है ? वह मरी नहीं है ?''

''नहीं।''

''तूने तो कहा था मर गयी ?''

''मैंने तो गला दबाया और समझा मर गयी होगी लेकिन आगे निकल गयी, कहीं चली गयी और किसी साधु बाबा की मेहरबानी हो गयी और मेरे को लगता है कि रुपये में से १५ आना पक्की बात है कि वही सुयशा है। जोगन का और उसका रूप मिलता है।''

''कालू ! मुझे ले चल। मैं उसके कदमों में अपने दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदलना चाहता हूँ। कालू ! कालू !''

राजा पहुँचा और उसने पश्चाताप के आँसुओं से सुयशा के चरण धो दिये।

सुयशा ने कहा : ''भैया ! इंसान गलतियों का घर है, भगवान तुम्हारा मंगल करें।''

पुष्पसेन : ''देवी ! मेरा मंगल भगवान कैसे करेंगे ? देवी ! भगवान मंगल भी करेंगे तो किसी गुरु के द्वारा। देवी ! तू मेरी गुरु है, मैं तेरी शरण आया हूँ।''

राजा पुष्पसेन सुयशा के चरणों में गिरा। वही सुयशा का प्रथम शिष्य बना। पुष्पसेन को सुयशा ने गुरुमंत्र की दीक्षा दी। सुयशा की कृपा पाकर कालू भी धनभागी हुआ ! पुष्पसेन भी धनभागी हुआ ! दूसरे लोग भी धनभागी हुए।

१७वीं शताब्दी का कर्णावती शहर जिसको आज अमदावाद बोलते हैं, वहाँ की यह एक ऐतिहासिक घटना है, सत्य कथा है।

अगर उस १६ वर्षीय कन्या में धर्म के संस्कार नहीं होते तो नाच-गान करके राजा का थोड़ा प्यार पाकर स्वयं भी नर्क में पच मरती और राजा भी पच मरता। लेकिन उस कन्या ने संयम रखा तो आज उस कन्या का शरीर तो नहीं है लेकिन सुयशा का सुयश यह प्रेरणा जरूर देता है कि आज की कन्याएँ भी अपने ओज-तेज और संयम की रक्षा करके, अपने ईश्वरीय प्रभाव को जगाकर महान् आत्मा हो सकती हैं।

हमारे देश की कन्याएँ परदेशी भोगी कन्याओं का अनुकरण क्यों करें ? लाली-लिपस्टिक लगायी... 'बॉयकट' बाल कटवाये... शराब-सिगरेट पी... नाचा-गाया... धत्तेरे की ! यह नारी स्वातंत्र्य है ? नहीं, यह तो नारी का शोषण है। नारी स्वातंत्र्य के नाम पर नारी को कुटिल कामियों की भोग्या बनाया जा रहा है।

नारी 'स्व' के तंत्र हो, उसको आत्मिक सुख मिले, आत्मिक ओज बढ़े, आत्मिक बल बढ़े, ताकि वह स्वयं तो महान् बने ही साथ ही औरों को भी महान बनने की प्रेरणा दे सके... अन्तरात्मा का, स्व-स्वरूप का सुख मिले, स्व-स्वरूप का ज्ञान मिले, स्व-स्वरूप का सामर्थ्य मिले तभी तो नारी स्वतंत्र है। परपुरुष से पटायी जाये तो स्वतंत्रता कैसी ? विषय-विलास की पुतली बनाई जाये तो स्वतंत्रता कैसी ?

कब सुमिरोगे राम ?... संत कबीर के इस भजन ने सुयशा को इतना महान् बना दिया कि राजा का तो मंगल किया ही... साथ ही कालू जैसे कातिल का हृदय भी परिवर्तित कर दिया... और न जाने कितनों को ईश्वर की ओर लगाया होगा, हम लोग गिनती नहीं कर सकते। जो ईश्वर के रास्ते चलता है उसके द्वारा कई लोग अच्छे बनते हैं और जो बुरे रास्ते जाता है उसके द्वारा कईयों का पतन होता है।

आप सभी सद्भागी हैं कि अच्छे रास्ते चलने की रुचि भगवान ने जगायी है। थोड़ा-बहुत नियम ले लो, रोज थोड़ा जप करो, ध्यान करो, मौन का आश्रय लो, एकादशी का व्रत करो... आपकी भी सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत हों ऐसे किसी सत्पुरुष का सहयोग लो और लग जाओ। फिर तो आप भी ईश्वरीय पथ के पथिक बन जायेंगे, महान् परमेश्वरीय सुख को पाकर धन्य-धन्य हो जायेंगे।

(**'सुयशा ! कब सुमिरोगे राम...'** यह कैसेट अति लोकप्रिय हो रही है। आप इसे अवश्य सुनें। यह कैसेट सभी संत श्री आसारामजी आश्रमों एवं समितियों के पास उपलब्ध है।)

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १०५वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जुलाई २००१ के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

तुलसी मीठे वचन ते...

मधुर व्यवहार से सबके प्रिय बनिये

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

मीठी और हितभरी वाणी दूसरों को आनन्द, शांति और प्रेम का दान करती है और स्वयं आनन्द, शांति और प्रेम को खींचकर बुलाती है। मीठी और हितभरी वाणी से सद्‌गुणों का पोषण होता है, मन को पवित्र शक्ति प्राप्त होती है और बुद्धि निर्मल बनती है । ऐसी वाणी में भगवान का आशीर्वाद उतरता है और उससे अपना, दूसरों का, सबका कल्याण होता है । उससे सत्य की रक्षा होती है और उसीमें सत्य की शोभा है ।

मुख से ऐसा शब्द कभी मत निकालो जो किसीका दिल दुखाये और अहित करे। कड़वी और अहितकारी वाणी सत्य को बचा नहीं सकती और उसमें रहनेवाले आंशिक सत्य का स्वरूप भी बड़ा कुत्सित और भयानक हो जाता है जो किसीको प्यारा और स्वीकार्य नहीं लग सकता । जिसकी जबान गन्दी होती है उसका मन भी गन्दा होता है ।

कुटुम्ब-परिवार में भी वाणी का प्रयोग करते समय यह अवश्य ख्याल में रखा जाय कि मैं जिससे बात करता हूँ वह कोई मशीन नहीं है, 'रोबोट' नहीं है, लोहे का पुतला नहीं है, मनुष्य है। उसके पास भी दिल है । हर दिल को स्नेह, सहानुभूति, प्रेम और आदर की आवश्यकता होती है । अतः अपने से बड़ों के साथ विनययुक्त व्यवहार, बराबरीवालों से प्रेम और छोटों के प्रति दया तथा सहानुभूति-सम्पन्न तुम्हारा व्यवहार जादुई असर करता है ।

किसीका दुकान-मकान, धन-दौलत छीन लेना इतना बड़ा जुल्म नहीं है जितना कि किसी के दिल को तोड़ना क्योंकि दिल में दिलबर खुद रहता है। बातचीत के तौर पर आपसी स्नेह को याद रखकर सुझाव दिये जायें तो कुटुम्ब में वैमनस्य खड़ा नहीं होगा ।

कहने के ढंग में मामूली फर्क कर देने से कार्यदक्षता पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है । अगर किसीसे काम करवाना हो तो उससे यह कहें कि अगर आपके लिए अनुकूल हो तो यह काम करने की कृपा करें ।

बातचीत के सिलसिले में महत्ता दूसरों को देनी चाहिए, न कि अपने आपको । ढंग से कही हुई बात प्रभाव रखती है और अविवेकपूर्वक कही हुई वही बात विपरीत परिणाम लाती है ।

दूसरों से मिलजुलकर काम वही कर सकता है जो अपने अहंकार को दूसरों पर नहीं लादता । ऐसा अध्यक्ष अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से कोई गलती हो जाये तो वह उस गलती को स्वयं अपने ऊपर ले लेता है और कोई अच्छा काम होता है तो उसका श्रेय दूसरों को देता है ।

अपने साथियों की व्यक्तिगत या घरेलू समस्याओं के प्रति सहानुभूति रखकर, यथाशक्ति उनकी सहायता करना दक्ष नेतृत्व का चिह्न है । कोई अगर अच्छा काम कर लाये तो उसकी प्रशंसा करना और जहाँ उसकी कमियाँ हों वहाँ उसका मार्गदर्शन करना भी दक्ष नेतृत्व की पहचान है ।

अपने साथ काम करनेवालों के साथ मैत्री और अपनत्व का सम्बन्ध कार्य में दक्षता लाता है। जहाँ परायेपन की भावना होगी वहाँ नेतृत्व में एकसूत्रता नहीं होगी और काम करनेवाले तथा काम लेनेवाले के बीच समन्वय न होने के कारण कार्य में ह्रास होगा ।

यह विचार छोड़ दो कि बिना डाँट-डपट के, बिना डराने-धमकाने के और बिना छल-कपट के तुम्हारे मित्र-साथी, स्त्री-बच्चे या नौकर-चाकर

बिगड़ जायेंगे। सच्ची बात तो यह है कि डर, डाँट और छल-कपट से तो तुम उनको पराया बना देते हो और सदा के लिए उन्हें अपने से दूर कर देते हो।

प्रेम, सहानुभूति, सम्मान, मधुर वचन, सक्रिय हित, त्याग-भावना आदि से हर किसीको सदा के लिए अपना बना सकते हो। तुम्हारा ऐसा व्यवहार होगा तो लोग तुम्हारे लिए बड़े-से-बड़े त्याग के लिए तैयार हो जायेंगे। तुम्हारी लोकप्रियता मौखिक नहीं रहेगी। लोगों के हृदय में बड़ा मधुर और प्रिय स्थान तुम्हारे लिए सुरक्षित हो जायेगा। तुम भी सुखी हो जाओगे और तुम्हारे संपर्क में आनेवाले को भी सुख-शांति मिलेगी।

गोस्वामी तुलसीदासजी का वचन हमेशा याद रखने जैसा है :

तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण यह मंत्र है, तज दे वचन कठोर॥

यदि सुन्दर रीति से, सांत्वनापूर्ण, मधुर एवं स्नेह संयुक्त वचन सदैव बोले जायें तो इसके जैसा वशीकरण का साधन संसार में और कोई नहीं है। परन्तु यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि अपने द्वारा किसीका शोषण न हो। मधुर वाणी उसीकी सार्थक है जो प्राणिमात्र का हितचिंतक है। किसीकी नासमझी का गैर-फायदा उठाकर गरीब, अनपढ़, अबोध लोगों का शोषण करनेवाले शुरूआत में तो सफल होते दिखते हैं किन्तु उनका अन्त अत्यन्त खराब होता है। सच्चाई, स्नेह और मधुर व्यवहार करनेवाला कुछ गँवा रहा है ऐसा किसीको बाहर से शुरूआत में लग सकता है किन्तु उसका अन्त अनंत ब्रह्मांडनायक ईश्वर की प्राप्ति में परिणत होता है। खुदीराम मधुरता और सच्चाई पर अडिग थे। लोग उनको भोला-भाला और मूर्ख मानते थे। प्रेम और सच्चाई से जीनेवाले, हुगली जिले के देरे गाँव के ये खुदीराम आगे चलकर रामकृष्ण परमहंस जैसा पुत्ररत्न प्राप्त कर सके। सच्चाई और मधुर व्यवहार का फल शुरू में भले न दिखे किन्तु वह अवश्यमेव उन्नतिकारक होता है।

*

भक्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी

[गतांक से आगे]

तत्पश्चात् गोस्वामीजी काशी पहुँचे और वहाँ प्रह्लाद घाटपर एक ब्राह्मण के घर निवास किया। वहाँ उनकी कवित्वशक्ति स्फुरित हो गयी और वे संस्कृत में रचना करने लगे। यह एक अद्भुत बात थी कि दिन में वे जितनी रचना करते रात में सब की सब लुप्त हो जाती। यह घटना रोज घटती, परंतु वे समझ नहीं पाते थे कि मुझको क्या करना चाहिए।

आठवें दिन तुलसीदासजी को स्वप्न हुआ। भगवान शंकर ने कहा कि तुम अपनी भाषा में काव्य-रचना करो। नींद उचट गयी, तुलसीदासजी उठकर बैठ गये। उनके हृदयमें स्वप्न की आवाज गूँजने लगी। उसी समय भगवान शिव और माता पार्वती दोनों ही उनके सामने प्रगट हुए। तुलसीदासजी ने साष्टांग प्रणाम किया। शिवजी ने कहा : ''भैया !' अपनी मातृ-भाषा में काव्य-निर्माण करो, संस्कृत के पचड़े में मत पड़ो। जिससे सबका कल्याण हो, वही करना चाहिए। बिना सोचे-विचारे अनुकरण करने की आवश्यकता नहीं है। तुम जाकर अयोध्या में रहो और वहीं काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी कविता सामवेद के समान सफल होगी।'' इतना कहकर गौरीशंकर अन्तर्धान हो गये और उनकी कृपा एवं अपने सौभाग्य की प्रशंसा करते हुए तुलसीदासजी अयोध्या पहुँचे।

वे सरयू-स्नान करके अयोध्याजी के मंदिरों, गलियों और अरण्यों में विचरने लगे। एक संत ने उनसे कहा कि 'चलिए आपके रहने के लिए रमणीय

स्थान ढूँढ़ें ।' वे उन्हें एक स्थानपर ले गये, जहाँ बहुत-से बरगद के वृक्ष लगे हुए थे। उनमें एक सबसे बड़ा वटवृक्ष था, जिसके नीचे बड़ी ही सुन्दर वेदी थी। उस वेदी के पास अग्नि के समान देदीप्यमान एक महात्मा सिद्धासन से बैठे हुए थे। वह स्थान तुलसीदासजी को इतना अच्छा लगा कि उनके मन में हठात् यह इच्छा हो गयी कि यहीं कुटी बनाकर रहें। जब तुलसीदासजी उन महात्मा के पास गये, तब उन्होंने अपना आसन छोड़ दिया और कहा कि मेरे गुरु ने जो आदेश किया था, वह पूरा हो गया। उन्होंने कहा था कि यहीं तुलसीदासजी रामायण की रचना करेंगे, इसलिए यह सिद्धपीठ है, श्रीहनुमानजी के बल से आदिकवीश्वर वाल्मीकि ही तुलसीदासजी के रूप में प्रगट होकर हिन्दी भाषा में रामकथा का विस्तार करेंगे, उनके आते ही यह बगीचा और कुटी उन्हें सौंप देना और शरीर-त्याग करके मेरे पास आ जाना। इतना कहकर वे वहाँ से हट गये और योग से अग्नि धारण करने लगे । उनका शरीर तुलसीदासजी के सामने ही जलकर भस्म हो गया । यह कौतुक देखकर गोस्वामीजी के मुख से एकाएक निकल पड़ा- 'भगवान ! तुम्हारी बलिहारी है।'

तुलसीदासजी वहाँ रहने लगे । एक समय दूध पीते थे। भगवान का भरोसा था। संसार की चिंता उनका स्पर्श नहीं कर पाती थी। कुछ दिन यों ही बीते। संवत् १६३१ आ गया। उस वर्ष चैत्र शुक्ल रामनवमी के दिन प्रायः वैसा ही योग जुट गया था, जैसा त्रेता में रामजन्म के दिन था। उस दिन प्रातःकाल श्रीहनुमानजी ने प्रगट होकर तुलसीदासजी का अभिषेक किया, शिव, पार्वती, गणेश, सरस्वती, नारद और शेष ने आशीर्वाद दिये और सबकी कृपा एवं आज्ञा प्राप्त करके श्रीतुलसीदासजी ने श्रीरामचरितमानस की रचना प्रारंभ की। दो वर्ष सात महीने छब्बीस दिन में श्रीरामचरितमानस की रचना समाप्त हुई। संवत् १६३३ मार्गशीर्ष मास के शुक्लपक्ष में रामविवाह के दिन सातों काण्ड पूरे हो गये।

यह कथा पाखण्डियों के छल प्रपंच को मिटानेवाली है। पवित्र सात्त्विक धर्म का प्रचार करनेवाली है। कलिकाल के पाप-कलाप का नाश करनेवाली है। भगवत्प्रेम की छटा छटकानेवाली है। संतों के चित्त में भगवत्प्रेम की लहर पैदा करनेवाली है। भगवत्प्रेम शिवजी की कृपा का विशेष प्रसाद है, यह रहस्य बतानेवाली है। इस दिव्य ग्रन्थ की समाप्ति मंगलवार को हुई, उसी दिन इस पर लिखा गया : 'शुभमिति हरिः ॐ तत् सत् ।' देवताओं ने जय जयकार की ध्वनि की और फूल बरसाये। सच्ची बात तो यह है कि यह ग्रंथ जिस दिन प्रारंभ किया गया था उसी दिन समाप्त भी हो गया था, परंतु मनुष्य की दुर्बल लेखनी ने इसके पूरा होने में इतना विलंब लगा दिया। उसी समय श्री गणेशजी ने इस ग्रंथ की पाँच प्रतियाँ लिखी और वे तत्काल सत्यलोक, कैलास, नागलोक, द्युलोक और दिक्पाल लोक में भेज दी गयीं। चारों ओर आनंद मनाया जाने लगा । देवता, मनुष्य आदि सभी संप्रदायों ने इसे स्वीकार किया । इसके पश्चात् श्री हनुमानजी ने प्रगट होकर अथ से इति तक पूरी पुस्तक सुनी । श्रीतुलसीदासजी को वरदान दिये, रामायण की प्रशंसा की। श्री रामचरितमानस क्या है, इस बात को सभी अपने-अपने भाव के अनुसार समझते एवं ग्रहण करते हैं। परंतु अब भी उसकी वास्तविक महिमा का स्पर्श विरले पुरुष ही कर सके होंगे।

मनुष्यों में सबसे पहले यह ग्रंथ सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ मिथिला के परम संत श्री रूपारुण स्वामीजी को। वे निरंतर विदेह जनक के भाव में ही मग्न रहते थे और श्री रामजी को अपना जामाता समझकर प्रेम करते थे। गोस्वामीजी ने उन्हीं को सबसे अच्छा अधिकारी समझा और श्रीरामचरितमानस सुनाया। उसके बाद बहुतों ने रामायण की कथा सुनी। उन्ही दिनों भगवान की आज्ञा हुई कि तुम काशी जाओ। (क्रमशः)

सफलता की कुंजी : संयम

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सारी सफलताओं की महान् कुंजी है : संयम। वीर्यरक्षण से मनुष्य ऐसा सामर्थ्य प्राप्त करता है कि वह जीवन के जिस क्षेत्र में सफल होना चाहे, हो सकता है।

वीर्य शरीर की बहुत मूल्यवान् धातु है। भोजन से वीर्य बनने की प्रक्रिया बड़ी लंबी है। श्री सुश्रुताचार्यजी ने लिखा है :

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदस्यास्थिः ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसंभवः॥

'जो भोजन पचता है, उसका पहले रस बनता है। पाँच दिन तक उसका पाचन होकर रक्त बनता है। पाँच दिन बाद रक्त से माँस, उसमें से ५-५ दिन के अंतर से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा और मज्जा से अंत में वीर्य बनता है। स्त्री में जो यह धातु बनती है उसे 'रज' कहते हैं।'

अगर वीर्य को संयत किया जाये तो ओज बनता है। उससे एक गुप्त नाड़ी जाग्रत होती है, जिससे आत्मज्ञान का सीधा संबंध है।

एक युवक ने यह बात पढ़ी :

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

ब्रह्मचर्य की दृढ़स्थिति हो जाने पर सामर्थ्य का लाभ होता है। (योगदर्शन : साधनापाद : ३८)

इतने में एक पतला-दुबला संन्यासी सामने से आता दिखाई दिया। उसे देखकर युवक हँसा और बोला : 'ब्रह्मचर्य का पालन करके साधु बन गया और शरीर देखो तो दुबला-पतला ! पतंजलि महाराज के ये वचन पुराने हो गये हैं। वे अतीत के लिए होंगे, अभी के युग के लिए नहीं... यह देखो दुबले-पतले संन्यासी और हम कितने मोटे-ताजे !'

युवक बुद्धिजीवी रहा होगा, जमानावादी रहा होगा। भोग-रस्सी में बँधा हुआ कुतर्की रहा होगा। वर्तमान में बचाव की कला सीखा हुआ, अपने पैर पर कुल्हाड़ा मारनेवाला रहा होगा। वह संन्यासी से बोला :

''महाराज ! **ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः**। कहा है पतंजलि महाराज ने, लेकिन आपका शरीर तो देखो, कैसा दुबला-पतला है ? महाराज ! कैसे हैं ?''

फिर आगे कहा : ''देखो, हम कैसे मजे से जी रहे हैं ? सुधरा हुआ जमाना है, चार दिन की जिंदगी है। मजे से जीना चाहिए...'' ऐसा करके उसने अपनी मज़ा लेने की बेवकूफी की डींग हाकी।

संन्यासी ने सारी बेवकूफी की बातें सुनते हुए भी कहा :

''चलो, मेरे पीछे-पीछे आओ।''

संन्यासी ब्रह्मचर्य के तेज से संपन्न था। निर्भीकता थी, वचन सामर्थ्य था। वह युवक ठगा-सा साधु के पीछे-पीछे चल पड़ा।

चलते-चलते दोनों पहुँचे एकांत अरण्य की उस गुफा में, जहाँ संन्यासी का निवास-स्थान था। संन्यासी उस युवक को पास की एक गुफा में ले गया तो तीन शेर दहाड़ते हुए आये। ब्रह्मचर्य की मखौल उड़ानेवाला युवक तो संन्यासी के पैरों से लिपट गया। संन्यासी ने शेरों पर नज़र डाली और शेर पूँछ हिलाते हुए पालतू पिल्ले की नाईं बैठ गये।

युवक अभी तक थर-थर काँप रहा था। वह देखता ही रह गया ब्रह्मचर्य की महिमा का प्रताप ! अब उसे पता चला कि ब्रह्मचर्य के तेज में कितना सामर्थ्य छुपा है। युवक ने क्षमा माँगी।

कहाँ तो पतला-दुबला दिखनेवाला संन्यासी और कहाँ तीन-तीन शेरों को पालतू पिल्ले की तरह शांति से बैठा देना ! यह संन्यासी के ब्रह्मचर्य का प्रताप नहीं तो और क्या था ?

अभी कई लोग कहते हैं 'खाओ, पियो, मौज़ करो... संयम में क्या रखा है ! चार दिन की जिंदगी को मज़े से जी लो।' लेकिन शरीर के सुख को ही मज़ा माननेवाले बेचारों के क्या हाल हैं ?

भारत से १० गुनी ज्यादा दवाइयाँ अमेरिका में खर्च होती हैं जबकि भारत की आबादी अमेरिका से करीब साढ़े तीन गुना ज्यादा है। मानसिक रोग इतने बढ़े हैं कि हर दस

अमेरिकन में से एक को मानसिक रोग होता है। उनको मानसिक चिकित्सा की ज़रूरत है। जब तक जीवन में संयम नहीं आया तब तक चिकित्सा खाक झख मारेगी ?

फ्रायड का मनोविज्ञान पढ़ते रहे और तदनुसार आचरण करते रहे तो मनुष्य से पशुता की ओर जायेंगे और क्या होगा ! एक फ्रायड नहीं, उसके मत को माननेवाले मूर्खों के लेख पढ़कर कइयों की तबाही हो गयी अमेरिका, यूरोप, थाइलैण्ड जैसे देशों में। अब भारत में भी हो रही है। अठारह-बीस वर्ष के युवान-युवतियाँ अपराधी जैसा चेहरा बना लेते हैं। गाल पिचके हुए, आँखें धँसी हुई, चेहरे पर देखो तो कोई तेज नहीं, बिल्कुल निस्तेज चेहरा... कोई-कोई संयमी भी होते हैं।

जो धातुक्षय करके मजा लेना चाहते हैं उन्हें मजा तो मिलता है क्षण भर का, लेकिन तबाही हो जाती है। इसीलिए 'युवाधन सुरक्षा अभियान' चलाया जा रहा है। देश का भविष्य युवाधन पर निर्भर करता है और युवाधन नष्ट होता जा रहा है। कई योजनाएँ बनाओ लेकिन युवक निस्तेज हैं तो क्या सँभालेंगे ?

निस्तेज मनुष्य सफलता भी हज़म नहीं कर सकते, निस्तेज आदमी आशीर्वाद भी हज़म नहीं कर सकते, निस्तेज आदमी ऊँचाइयों को भी नहीं छू सकते, निस्तेज आदमी ईश्वरत्व को भी प्रगट नहीं कर सकते। अतः प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि अपने यौवन-धन की सुरक्षा के प्रति सजाग एवं सावधान रहे। फ्रायड जैसे जीवन को तबाह करनेवाले मनोवैज्ञानिकों की बातों के चक्कर में न आये।

फ्रायड ने लिखा कि सात वर्ष की आयु से ही बच्चा अपनी माँ के साथ संभोग करने की इच्छा करता है और लड़की अपने पिता के साथ कुकर्म करने की इच्छा करती है। ऐसा-का-ऐसा पढ़कर, अपने तर्क का संपुट देकर किसी वक्ता ने 'संभोग से समाधि' का भाषण दिया। उसकी प्रसिद्धि कुप्रसिद्धि में परिणत हो गयी।

लाखों युवान अपना स्वास्थ्य खो बैठे एवं करोड़ों देशी-परदेशी युवक एवं आध्यात्मिक मार्ग पर जानेवाले युवान भी 'संभोग से समाधि' और फ्रायड का मनोविज्ञान पढ़कर भक्त से अभक्त हो गये। संयमी असंयमी हो गये, सदाचारी दुराचारी हो गये। जबकि नारद, शाण्डिल्य, वशिष्ठजी एवं पतंजलि महाराज जैसों का मनोविज्ञान पढ़कर आइन्स्टाइन जैसे विद्यार्थी जीवन में असफल व्यक्ति भी विश्वविख्यात वैज्ञानिक हुए, 'नोबल प्राइज़' विजेता हो गये। चंचल मनवाले शांत हो गये, पामर साधक होने लगे एवं साधक सिद्ध होने लगे। एक-दो नहीं, हजार-दो हजार नहीं, लाखों-लाखों लोग पतंजलि के योगदर्शन का आश्रय लेकर संयमी, सदाचारी एवं योगविद्या के पथिक बने।

जो इंद्रियों के विषय-विकारों को पोषता है वह अपने-आपका शत्रु है और जो अपनी पशुता को हटाकर मनुष्यता को निखारकर संयत रहता है वह अपने-आपका मित्र है। जो कामविकार को पोषकर सुखी होने की कोशिश करता है वह पागल है, मूर्ख है। अभी भले पागल न दिखे लेकिन पागलपन का सामान उसके पास खूब है। ऐसे ही चलता रहा तो उसे पागल होने में देर न लगेगी।

फ्राइड ने भी मृत्यु से पहले अपने पागलपन को स्वीकार किया था। उसके अनुयायी यदि अपने पागलपन को ईमानदारी से स्वीकार न करें तो भी वे एक पागल के अनुयायी तो अवश्य सिद्ध होते हैं।

कई एकदम खुले पागल होते हैं तो कई मानसिक संतुलन गुमाये हुए होते हैं। अमेरिका में दो करोड़ तीन लाख लोग 'मेन्टली डिस्टर्ब्ड' जैसा व्यवहार करते हैं हालाँकि वे पागलख़ाने में नहीं हैं लेकिन उनका आचरण पागलों जैसा ही है ऐसा विदेशी अख़बार बोलते हैं।

यह क्यों होता है : वीर्यक्षय से ज्ञानतंतु कमज़ोर हो जाते हैं। उन्हें केवल 'एड्स' की बीमारी ही नहीं, दुनियाभर की बीमारियाँ होती हैं। मनुष्यता तो थी लेकिन असंयम से मनुष्यता की जगह पर पशुता आ जाती है तो जीवन बरबाद हो जाता है। अरे ! पशु से भी गये बीते हो जाते हैं। पशु भी ऋतु के अनुसार व्यवहार करते हैं। बिना ऋतु के कुत्ता भी कुत्ती के पीछे नहीं जाता। सिंह जीवन में एक बार ही संभोग करता है फिर उसे याद आता है कि मैं एक सिंह और पीछे... ? आगे छलाँग मारता है। उसकी संभोग की वृत्ति और साधन पूरे हो जाते हैं और बड़े-बड़े हाथी आदि को भी मार गिराता है।

संयम जीवन का बल है। संयम सफल जीवन की नींव है। संयम उन्नति की पहली शर्त है। अतः इंद्रियों का संयम, मन का संयम एवं विचारों का संयम करके अपने जीवन को भी उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर करते जाओ। हे भारत के नवजवानो ! उठो, आप जगो, औरों को जगाओ अभी भी वक्त है।

*

प्र. जीवन का श्रेष्ठ सार क्या है ?

उ. चालू व्यवहार में हर घण्टे में दो-पाँच मिनट निकालकर अपने-आपसे पूछो कि 'ये व्यवहार हो रहा है और जो परिणाम आ रहा है अच्छा या बुरा... आखिर क्या ? बड़े-बड़े पद-प्रतिष्ठावाले भी आखिर में सब ले गये कि छोड़ गये ?' कभी-कभी मौका मिले तो अपने तन-मन को श्मशान में ले जायें और अपने को बतायें कि 'देख, आखिर में इस शरीर की भी यही दशा होगी !' ऐसा करके अपना विवेक-वैराग्य जगायें। जब विवेक-वैराग्य जागेगा तो आत्म-साक्षात्कार करने की रुचि होगी। ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के सान्निध्य में यदा-कदा जाते रहें, उनके श्रीचरणों में श्रद्धा-भक्तिपूर्वक बैठें और अपनी आत्मा को पहचानें। यही जीवन का श्रेष्ठ सार है।

प्र. महामंत्र कौन-सा है ?

उ. जिस मंत्र में तुम्हारी श्रद्धा होती हो, जिस मंत्र का अर्थ समझ सकते हो, वही महामंत्र है। मंत्र जितना छोटा होता है उतना ही, उसका सामर्थ्य ज्यादा होता है।

प्र. स्वप्न में इष्ट-दर्शन अथवा भगवद्-दर्शन हो तो क्या समझें ?

उ. स्वप्न में भगवद्-दर्शन होते हैं ये अच्छी बात है। आध्यात्मिकता में प्रगति की निशानी है। स्वप्न में देवी-देवताओं के, इष्ट के, मंदिर के, प्रतिमाओं के दर्शन होते हैं तो समझें आपकी अंतस चेतना को परमात्मा की प्यास है और यह प्यास बढ़ती रहे ऐसा प्रयत्न करें। वह प्यास कहीं मंदिर और मूर्ति तक ही सीमित न रह जाये, वरन् परमात्मा की प्यास जगाकर सद्गुरु को खोज लो। स्वप्न में शिव दर्शन होते हैं तो जाग्रत में भी दर्शन हों ऐसे संकल्प करो और जाग्रत में भी जैसी मूर्ति मंदिरों में देखी है वैसे नहीं, वरन् सर्वत्र शिवतत्त्व व्याप्त है ऐसे शिव के दर्शन हो वैसा प्रयत्न करें।

दिल्ली की प्रसिद्ध कुतुबमीनार का सच...

हजार वर्षों से भी अधिक समय तक विदेशियों के अधीन रहने के कारण भारत के इतिहास में अनेकानेक सफेद झूठ घुसेड़ दिये गये हैं तथा वास्तविकता को जानबूझकर दबा दिया गया है। लम्बे समय से सरकारी मान्यता तथा संरक्षण में पुष्ट होने के कारण इन झूठी कथाओं पर सत्यता की मोहर लग चुकी है।

संत श्री आसारामजी आश्रम, अमदावाद से प्रकाशित मासिक समाचार पत्र 'लोक कल्याण सेतु' के गत तीन अंकों में आपने पढ़ा होगा कि कैसे-कैसे षड्यंत्र रचकर एक पवित्र शिवमंदिर को क्रूर मुगल बादशाह शाहजहाँ तथा उसकी तथाकथित प्रेयसी की झूठी कथा से कलंकित किया जा रहा है।

ऐसा ही एक सफेद झूठ भारत के उस विश्वप्रसिद्ध स्तंभ के पीछे भी गढ़ा गया है जिसे संसार में 'कुतुबमीनार' के नाम से जाना जाता है।

जिस प्रकार तथाकथित 'ताजमहल' के साथ 'शाहजहाँ' की बेसिर-पैरवाली झूठी प्रेमगाथा थोपी गयी उसी प्रकार तथाकथित कुतुबमीनार के पीछे भी एक अन्य मुगल शासक 'कुतुबुद्दीन ऐबक' का नाम थोप दिया गया है।

एक अंग्रेज पुरातत्त्व प्रमुख कनिंगहम द्वारा फैलायी गयी सरकारी अफवाह को सच मानकर समस्त संसार को यह झूठ सुनाया जा रहा है कि इसे 'कुतुबुद्दीन ऐबक' ने बनवाया। यह कितने दुर्भाग्य की बात है कि जिन्होंने इस भारत की भूमि को अपने अथक परिश्रम से सजाया

सँवारा है भारत के वे मूल निवासी आज भी विदेशी लुटेरों के मानसिक दबाव में ही जीवन बसर कर रहे हैं। उन्हें अपने ही देश में अपनी बात कहने का अधिकार नहीं है। इतना ही नहीं सारे प्रतिबंध, बड़े-बड़े नियम-कानून केवल और केवल उन्हीं के लिए बने हैं।

तथाकथित कुतुबमीनार मुगल शासक कुतुबुद्दीन ने बनवायी इस बात का तो कोई ठोस प्रमाण नहीं है परन्तु कुतुबुद्दीन ने उस स्थान पर बने २७ मंदिरों को नष्ट करने का पाप किया था इस बात का ठोस प्रमाण उपलब्ध है।

उसने एक शिलालेख पर स्वयं लिखवाया है कि तथाकथित 'कुतुबमीनार' के चारों ओर बने २७ मंदिरों को उजाड़ने की दुष्टता उसने की।

सच तो यह है कि तथाकथित 'कुतुबमीनार' उस समय भी थी जब दुष्ट कुतुबुद्दीन का परदादा भी नहीं पैदा हुआ था। यह स्तंभ एक प्राचीन हिन्दू कलाकृति है जिसका उपयोग नक्षत्र विज्ञान की प्रयोगशाला के रूप में किया जाता था।

इस स्तंभ के पार्श्व में महरौली नगरी है। यह संस्कृत नाम मिहिरावली का अपभ्रंश है। प्राचीन भारत के महान नक्षत्रविज्ञानी तथा महाराजा विक्रमादित्य के विश्वविख्यात दरबारी ज्योतिषी 'आचार्य मिहिर' अपने सहायक विशेषज्ञों के साथ यहाँ रहते थे। उन्हीं के नाम से इसका नाम मिहिरावली (महरौली) पड़ा।

'आचार्य वराह मिहिर' इस तथाकथित कुतुबमीनार का उपयोग नक्षत्र विद्याध्ययन के लिए एक वेध-स्तंभ के रूप में किया करते थे।

इस वेध-स्तंभ के चारों ओर राशियों के २७ मण्डल बने हुए थे जो कुतुबुद्दीन द्वारा तुड़वा दिये गये। इसकी निर्माणकला में ऐसे कई चिन्ह हैं जिनसे इसके हिन्दू भवन होने के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं।

इस स्तंभ का घेरा २७ मोड़ों, चापों तथा त्रिकोणों का है तथा ये सब क्रमशः एक के बाद एक हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि इसके निर्माण में २७ की संख्या का विशेष महत्त्व रहा है। यह संख्या भारतीय ज्योतिष एवं नक्षत्र विज्ञान से संबंधित है।

इसका मुख्य द्वार इस्लामी मान्यता के अनुसार पश्चिम की ओर न होकर उत्तर की ओर है। इसके अनेक खंभों तथा दीवारों पर संस्कृत में उत्कीर्ण शब्दावली अभी भी देखी जा सकती है। यद्यपि इसे काफी विद्रूप कर दिया गया है तथापि सूक्ष्मतापूर्वक देखने से भित्ति में अनेक देवमूर्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इतना ही नहीं 'कुतुबमीनार' का अर्थ जानकर आप भी दंग रह जायेंगे कि इस अरबी शब्द का अर्थ नक्षत्रीय स्तंभ ही है। हिन्दी में जिसे वेध-स्तंभ कहते हैं उसे ही अरबी में 'कुतुबमीनार' कहा जाता है। इस नाम का कुतुबुद्दीन से कोई भी संबंध नहीं है। फिर भी यह कहा जाना कि **कुतुबुद्दीन ने इसे बनाया इसलिए इसका नाम 'कुतुबमीनार' पड़ा, कितना बड़ा धोखा है !**

– पी. एन. ओक

निष्पक्ष इसाई विद्वानों के ईसाई धर्म पर विचार

※ विश्व में किसी भी धर्म में इतनी वाहियात अवैज्ञानिक, आपस में विरोधी और अनैतिक बातों का उपदेश नहीं दिया जितना गिरजाघर ने दिया है।

– टॉलस्टाय

※ बाईबिल पुराने और दकियानूसी अंधविश्वासों का बंडल है। **- जॉर्ज बर्नार्ड शॉ**

※ दुनिया की सबसे बड़ी बुराई है रोमन कैथोलिक चर्च। विश्वप्रसिद्ध विद्वान नित्शे, एलिजाबेथ कैडी, ऐलन गार्डनर, जॉर्ज डब्ल्यू. फूट, इत्यादि पचीसों निष्पक्ष ईसाई विद्वानों ने भी ईसाई धर्म की घोर निंदा की है। पर हिंदू धर्म की विश्व के पचासों निष्पक्ष ईसाई विद्वानों ने अत्यधिक प्रशंसा की है। **- एच.जी. वेल्स**

※ मैंने ४० वर्षों तक विश्व के सभी बड़े धर्मों का अध्ययन करके पाया कि हिंदू धर्म के समान पूर्ण, महान और वैज्ञानिक धर्म कोई नहीं है। **– एनी बेसेंट**

इससे कई निष्पक्ष ईसाई विद्वानों ने हिंदुओं के धर्म परिवर्तन का विरोध किया है, अतः वे राष्ट्रवादी ईसाई हमारे भाई हैं। उनके पूर्वज सब हिंदू ही थे। पश्चिमी यूरोप, उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में १६,५०,००० व्यक्ति प्रतिवर्ष ईसाई धर्म को सारहीन, अवैज्ञानिक और निरर्थक समझकर छोड़ रहे हैं। चर्च बिक रहे हैं और हिंदुओं के मंदिर बन रहे हैं। इसलिए भारत के नागरिको ! इन बिदेशी ईसाई मिशनरियों के दलालों से सावधान रहिये। *(संकलन : डॉ. प्रेमजी मकवाणा)*

विविध व्याधियों में आहार-विहार

तैत्तरीय उपनिषद् के अनुसार :

'अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्-तस्मात् **सर्वौषधमुच्यते।**' अर्थात् भोजन ही प्राणियों की सर्वश्रेष्ठ औषधि है, क्योंकि आहार से ही शरीरस्थ सप्तधातु, त्रिदोष तथा मलों की उत्पत्ति होती है।

युक्तियुक्त आहार, वायु, पित्त और कफ इन तीनों दोषों को समान रखते हुए आरोग्य प्रदान करता है और किसी कारण से रोग उत्पन्न हो भी जाये तो उचित आहार-विहार के सेवन से रोगों को समूल नष्ट किया जा सकता है। आहार में अनाज, दलहन धान्य, घृत, तेल, शाक, दूध, जल, इक्षु तथा फल का समावेश होता है।

अति मिर्च-मसाला, अति नमक तथा तेलयुक्त, पचने में भारी पदार्थ, दूध पर विविध प्रक्रिया करके बनाये गये अति शीत अथवा अति उष्ण पदार्थ सदा अपथ्यकर हैं।

दिन में सोना, कड़क धूप में अथवा ठंडी हवा में घूमना, अति जागरण, अति श्रम करना अथवा नित्य बैठे रहना, वायु-मल-मूत्रादि वेगों को रोकना, ऊँची आवाज़ में बात करना, अति मैथुन, क्रोध-शोक आरोग्यनाशक माना गया है।

व्याधि अनुसार आहार-विहार :

(१) ज्वर (बुखार) : बुखार में प्रथम उपवास रखें। बुखार उतरने पर द्रव आहार लें। इसके लिए पुराने साठी के चावल, मूँग या मसूर में चौदह गुना पानी मिलायें। मुलायम होने तक पकायें। यह पचने में हलका, अग्निवर्धक, मल-मूत्र और दोषों का अनुलोमन करनेवाला और बल बढ़ानेवाला है।

प्यास लगने पर उबले हुए पानी में सोंठ मिलाकर लें अथवा 'षडंगोदक' का प्रयोग करें। (नागरमोथ, चंदन, सोंठ, खस, काली खस (सुगन्धवाला) तथा पित्तपापड़ा, पानी में उबालकर, षडंगोदक बनाया जाता है।) षडंगोदक के पान से पित्त का शमन होता है, प्यास तथा बुखार कम होता है। बुखार के समय पचने में भारी, विदाह उत्पन्न करनेवाले पदार्थों का सेवन, स्नान, व्यायाम, घूमना-फिरना अहितकर है। **बुखार में दूध सर्प विष के समान है।**

(२) पांडु (खून की कमी) (Anemia) : गेहूँ, पुराने साठी के चावल, जौ, मसूर, घी, अनार विशेष पथ्यकर हैं। शाकों में, पालक, तोरई, मूली, परवल, लौकी; फलों में अंगूर, मौसमी, अनार, सेवफल आदि पथ्यकर हैं। पित्त बढ़ानेवाले आहार, दिन में सोना, अतिश्रम, शोक-क्रोध अहितकर हैं।

(३) अम्लपित्त (Acidity) : आहार हलका, मधुर व रसात्मक हो। पुराने जौ, गेहूँ, चावल, मूँग, परवल, पेठा, लौकी, नारियल, अनार, मिश्री, शहद, गाय का दूध और घी विशेष पथ्यकर हैं। तिल, उड़द, कुलथी, लहसुन, नमक, दही, नया अनाज, मूँगफली, गुड़ का सेवन न करें।

(४) अजीर्ण : प्रथमतः उपवास रखें। बारबार, थोड़ी-थोड़ी मात्रा में गुनगुना पानी पीना हितकर है। अग्नि प्रदिप्त होने पर अर्थात् अच्छी भूख लगने पर मूँग का यूष, नीबू का शरबत, छाछ आदि द्रवाहार लेने चाहिए। पचने में भारी, स्निग्ध तथा अतिमात्रा में आहार तथा भोजन के बाद दिन में सोना हानिकारक है।

(५) चर्मरोग : पुराने चावल तथा गेहूँ, मूँग, मसूर, परवल, लौकी, तुरई विशेष पथ्यकर हैं। अत्यंत तीखे, खट्टे, खारे पदार्थ, दही, गुड़, मिष्टान्न, खमिरीकृत पदार्थ, इमली, टमाटर, मूँगफली, फल, मछली आदि वर्ज्य हैं। साबुन सुगंधित तेल, इत्र आदि का उपयोग न करें। चंदन चूर्ण अथवा चने के आटे या मुलतानी मिट्टी का प्रयोग करें। ढीले, सादे, सूती वस्त्र पहनें।

(६) सफेद दाग : चर्मरोग के अनुसार पथ्यपालन करें और दूध, खट्टी चीजें नीबू, संतरा, अमरूद, मौसमी आदि फलों का सेवन न करें।

(७) संधिवात, वातरोग : जौ की रोटी, कुलथी, साठी के लाल चावल, परवल, पुनर्नवा, सहिजन की फली, पपीता, अदरक, लहसुन, एरण्डी का तेल, गौमूत्र

अर्क (आश्रम में मिल सकता है), गरम जल सर्वश्रेष्ठ हैं। भोजन में गौघृत, तिल का तेल हितकर है।

(८) श्वास : अल्प मात्रा में द्रव, हलका, उष्ण आहार लें। रात्रि को भोजन न करें। स्नान एवं पीने के लिए उष्ण जल का उपयोग करें। गेहूँ, बाजरा, मूँग का सूप, लहसुन, अदरक का उपयोग करें। अति शीत, तले हुए पदार्थों का सेवन, धूल और धुआँ हानिकारक हैं।

रुद्राक्ष-महिमा

✲ रुद्राक्ष की माला को सभी मालाओं में श्रेष्ठ माना गया है तथा इस पर किये गए मंत्र-जाप का फल भी सभी मालाओं पर किये गये जाप से कई सहस्र गुना ज्यादा मिलता है।

✲ रुद्राक्ष हृदय को स्वच्छ, मन को शांत तथा दिमाग को शीतल रखता है। दीर्घ आयु एवं स्वास्थ्य प्रदान करता है। जो व्यक्ति रुद्राक्ष धारण करते हैं, उनको भूत-प्रेत आदि की बाधाएँ कभी भी परेशान नहीं करती हैं।

✲ रुद्राक्ष धारण करने से सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं।

✲ वात और कफ तथा अन्य रोगों का शमन करता है। रक्त का शोधन करता है।

✲ रुद्राक्ष के दाने रात को ताँबे के बर्तन में जल भरकर उसमें डाल दें। सुबह दानों को निकाल कर खाली पेट उस जल को पीने से हृदय रोग तथा कब्ज आदि में लाभ मिलता है।

✲ रुद्राक्ष के दाने दूध में उबालकर दूध पीने से स्मरणशक्ति का विकास होता है और खाँसी में भी आराम होता है।

✲ उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure) के रोगियों के लिए तो रुद्राक्ष की माला वरदान-स्वरूप है। इसके लिए आवश्यक है कि रुद्राक्ष के दाने या रुद्राक्ष की माला रोगी के हृदय तक लटकती रहे अर्थात हृदय-स्थल को स्पर्श करती रहे। यह रोगी के शरीर की अनावश्यक गर्मी अपने में खींचकर उसे बाहर फेंकती है।

नोट : नकली रुद्राक्ष से बचें। असली रुद्राक्ष समिति के पास आ गई है।

श्री हनुमानजी गुरुदेव के रूप में...

यह घटना मई, १९९५ की है। मेरे मित्र ने मुझे पूज्य गुरुदेव के वीडियो सत्संग में आने के लिए पहले ३-४ बार कहा था लेकिन मैं नहीं जा पा रहा था। उस दिन 'खोले' के हनुमानजी के मंदिर में प्रसाद चढ़ाकर श्री हनुमानचालीसा पढ़कर सोचने लगा कि : 'आज के समय में श्री हनुमानजी के दर्शन कहाँ होंगे ? बस, मूर्ति के ही दर्शन कर लो।' इतने में मेरी आँखें सहज ही बन्द हुई और एक घने जंगल में एक श्वेत वस्त्रधारी महापुरुष के दर्शन हुए, मैंने उनकी खूब आदर से पूजा की।

आँखें खुलने पर उस बात को सामान्य घटना समझकर मैंने उन मित्र को भी नहीं बताया। तब तक मैंने पूज्य गुरुदेव के दर्शन भी नहीं किये थे और कोई जानकारी भी नहीं थी।

फिर मेरे मित्र के प्रेमपूर्वक आग्रह करने पर मैं जून, १९९५ के दूसरे रविवार को सत्संग भवन में पहुँचा तो सीढ़ियों में मधुर कीर्तन सुनकर मेरा अंतःकरण झूम उठा। अन्दर जाकर ज्यों पूज्य गुरुदेव की फोटो के दर्शन किये तो मैं दंग रह गया क्योंकि मैंने 'खोले' के हनुमान मंदिर के सिद्ध पीठ में इन्हीं महापुरुष के ही दर्शन किये थे। इन्हीं की पूजा की थी।

उसके बाद पूज्य गुरुदेव से १९९६ के होली शिविर में नामदान भी मिला और धुलेंडी के दिन होली-रंग से पूज्य गुरुदेव ने मेरे अंतःकरण को भी रंग दिया। मेरा पहले का शराबी-कबाबी जीवन ऐसा छूट गया कि लगता है कभी ऐसा था ही नहीं।

सारी दुःख-परेशानियाँ एक-एक करके मेरे जीवन से उड़न छू हो चुकी हैं।

सद्गुरु परमात्मा की जय हो।

- भँवरलाल श्री अन्नालालजी, गाँव-बेसाणा, सीकर (राज.).

Registered Under Societies Registration Act 1860 No S 3106 of 1966-67 with Registrar of Societies, Delhi
संकट मोचन आश्रम (हनुमान मंदिर), रामकृष्णपुरम-६, नई दिल्ली-११००२२, भारत
SANKAT MOCHAN ASHRAM, RAMAKRISHNA PURAM-VI, NEW DELHI-110022, BHARAT

विहिप/३८/२००१ दिनांक ३० मई २००१

परम पूज्य स्वामी श्री आसाराम बापू जी महाराज !

श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम।

मेरे अस्वस्थ होते ही आपका शुभ आशीर्वाद दैवी शक्तियों को लेकर आया, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जिस तीव्र गति से हृदय आघात के रोग से मुझे मुक्ति मिली उसके लिए हर क्षण आपकी दैवीय कृपा का स्मरण होता रहता है। आपकी इस महती कृपा का कभी विस्मरण नहीं कर सकूँगा।

मेरा जीवन आपके आदेशानुसार कार्य करने के लिए ही है। आपकी कृपा से उसके लिए जीवन पर्यन्त मैं पूर्ण समर्पित रहूँगा। मेरे पास आपके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं है। पूर्ण विश्वास है कि आपके ही शुभाशीष से यह जीवन अभी तक चला है और आगे भी चलेगा।

पुनः श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम सहित,

आपका अकिंचन

अशोक सिंहल

(अशोक सिंहल)

कार्याध्यक्ष, विश्व हिन्दू परिषद।

*

The Sindh Mercantile Co-op. Bank Ltd.

Phone 2139043, 2131388 2130686
Sindh Bank Bhavan, Kalupur Kotni Rang, AHMEDABAD-380 001.

Ref. No. दिनांक २१.६.२००१

परम पूज्य स्वामी संत श्री आसारामजी बापू !

संतशिरोमणि, दुःखियों के दर्द दूर करनेवाले ! आपश्री के शुभ आशीर्वाद से हमारे दुःखों का निवारण हुआ है।

आपश्री ने हमको आशीर्वाद देकर जो मदद की है उसके लिए हम और हमारा समग्र सिंधी समाज सदैव आपका ऋणी रहेगा।

आपके आशीर्वाद से मृतप्राय हस्तियों को नया जीवनदान मिला है। माधवपुरा बैंक के घोटाले के कारण हमारा बैंक भी मुश्किल में आ गया था। उस वक्त हम आपश्री के चरणों में आये और हमारी एवं सिंधी समाज की लाज रखने की प्रार्थना की कि : ''सिंधी समाज की यह एकमात्र बैंक है और वह भी बंद हो जाय यह हमारे लिए दुःख की बात है।'' तब आपश्री ने हमको विश्वास दिलाते हुए कहा था कि : **''आपके बैंक को किसी भी प्रकार की आँच नहीं आयेगी। तुम अपना काम बाहर से करो, मैं अपना काम भीतर से करूँगा।''** इस प्रकार बंद हुआ माधवपुरा मर्कन्टाइल को. ऑ. बैंक आपके शुभ आशीर्वाद से पुनः चालू होने को है।

आपश्री की शीतल छत्रछाया में बैंक का कामकाज और विकसित हो ऐसी हम आपसे प्रार्थना करते हैं और आशीर्वाद के लिए नम्र विनती करते हैं।

आपका आज्ञाकारी,

(नामदेव लाडिकराम)

मैनेजिंग डायरेक्टर

दी सिंध मर्कन्टाइल को.ऑ.बैंक लि., अमदावाद।

रसायन चूर्ण

शास्त्रों में रसायन चूर्ण की बड़ी महिमा बताई गयी है। बुढ़ापे की कमजोरी और बीमारियों से बचने के लिए ऋषियों की यह अद्भुत खोज है। रसायन चूर्ण जितना विधिवत् और शुद्ध ढँग से बनाया जाता है उतना लाभ होता है। '**ॐ नमो नारायणाय।**' मंत्र का २१ बार जप करके सेवन करने से इसकी विशेषता और अधिक बढ़ जाती है।

छोटे-बड़े, रोगी-निरोगी सभी इसका सेवन कर सकते हैं। यह पाचनतंत्र, नाड़ीतंत्र और ओज-वीर्य की रक्षा करता है। इनका पुष्ट रहना आरोग्यता की कुंजी है। स्वप्नदोष, पेशाब व धातुसंबंधी बीमारियों में भी यह फायदा करता है। सुबह दातुन करके इसे चूसते-चूसते लें तो विशेष लाभ होगा। इसे पानी से लें, दूध से नहीं। पौन घण्टे बाद दूध पी सकते हैं।

जैसे गोमूत्र अर्क (गो-झरण अर्क) के सेवन से बीमारियाँ दूर रहती हैं, यदि हैं तो मिटती हैं। ऐसे ही आँवला रसायन चूर्ण को समझें। जैसे दोपहर को भोजन के बाद सुपारी की भाँति हरड़ खाने से भोजन के दोष दूर होते हैं, पाचन ठीक होता है। वैसे ही सुबह रसायन चूर्ण लेने से रात्रि के दोष दूर होते हैं।

मात्रा : २ से १० ग्राम या वैद्यकीय सलाह के अनुसार।

[धन्वंतरी आरोग्य केन्द्र, संत श्री आसारामजी आश्रम, अमदावाद।]

हरिद्वार (उत्तरांचल) : २ से ५ जून। पूज्यश्री हिमालय में एकांतवास के बाद तीर्थभूमि हरिद्वार पधारे । वहाँ ४ दिवसीय सत्संग-प्रवचन संपन्न हुआ। हर की पौड़ी से सटे पंतद्वीप में इन दिनों कुंभ-सा दृश्य दृष्टिगोचर हुआ।

देशभर से आए पूनम व्रतधारी साधक-साधिकाओं ने दर्शन-सत्संग प्राप्त कर व्रत पूर्ण किया।

पूज्यश्री ने उपस्थित साधक समुदाय को ईश्वरीय प्रीति व ईश्वरीय आनंद प्राप्त करने की युक्तियाँ बताई।

कभी वर्षा की रिमझिम... तो कभी गर्मी व धूप... प्रकृति की इन अठखेलियों के बीच सत्संग-प्रवचन संपन्न हुआ।

दुबई के साधकों की विशेष आग्रहपूर्ण माँग पर पूज्यश्री ने श्री सुरेशानंदजी को सत्संग-प्रवचन के लिए वहाँ भेजा।

गुरुपूर्णिमा पर्व पर वे स्वदेश लौट आयेंगे।

'ऋषि प्रसाद' स्वर्ण पदक प्रतियोगिता

'ऋषि प्रसाद' सेवाधारियों की पुरजोर माँग व उत्साह को देखते हुए 'ऋषि प्रसाद' स्वर्ण पदक प्रतियोगिता गुरुपूर्णिमा २००१ के पावन पर्व से पुनः प्रारम्भ की जा रही है। इसके अन्तर्गत 'ऋषि प्रसाद' के सेवाधारियों को उनके द्वारा बनाये गये सदस्यों की संख्या के अनुसार विभिन्न श्रेणियों में सम्मानित व पुरस्कृत किया जायेगा। प्रतियोगिता का परिणाम वर्ष २००२ के 'गुरुपूर्णिमा महोत्सव' पर घोषित किया जायेगा।

प्रतियोगिता में भाग लेने के इच्छुक नये सेवाधारी अपना सेवाधारी क्रमांक व रसीद बुकें प्रधान कार्यालय, अमदावाद अथवा क्षेत्रीय 'ऋषि प्रसाद' कार्यालयों से प्राप्त कर सकते हैं।

नियम : (१) प्रतियोगिता केवल व्यक्तिगत स्तर पर मान्य होगी।

(२) प्रतियोगिता की शुरूआत जुलाई २००१, अंक क्रमांक १०३ से मानी जायेगी।

(३) सेवाधारियों द्वारा स्वयं पत्रिका वितरित करने की सेवा के महत्त्व को देखते हुए इस प्रतियोगिता में जो सेवाधारी नियमित रूप से पूरे वर्ष पत्रिका वितरित करेंगे उनका प्रत्येक सदस्य को अंक वितरित करना एक सदस्य बनाने के बराबर माना जायेगा।

(४) प्रमुख सेवाधारियों व क्षेत्रीय कार्यालयों के अन्तर्गत सेवा करनेवाले सभी सेवाधारियों को उनके द्वारा भरी जानेवाली सभी रसीद बुकों पर उनका सेवाधारी क्रमांक लिखना आवश्यक होगा।

पूज्य बापू के आगामी कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	स्थान	संपर्क फोन
२४ से २६ जून दोपहर तक	दिल्ली	गुरुपूर्णिमा दर्शन महोत्सव	स्वर्णजयंति पार्क के पीछे, मनोरंजन पार्क, सेक्टर-११, रोहिणी, दिल्ली।	(०११) ७०२५१२५, ५४६२१६२, २४६५३०२, ५७२९३३८, ५७६४९६१.
२८ से ३० जून दोपहर तक	भोपाल	गुरुपूर्णिमा दर्शन महोत्सव	संत श्री आसारामजी आश्रम, नरसिंहगढ़ रोड, पेट्रोल पंप के पीछे।	(०७५५) ७४२५००, ७४२५९९.
१ से ३ जुलाई शाम तक	मुंबई	गुरुपूर्णिमा दर्शन महोत्सव	बोम्बे एग्जीबिशन सेन्टर, एन.एस.ई. कॉम्पलेक्स, वेस्टर्न एक्सप्रेस हाइवे, गोरेगाँव (पू.), मुंबई।	(०२२) ८७८९०९५, ६३६३१२५, ५७०३०८३.
५ से ८ जुलाई दोपहर तक	अमदावाद	गुरुपूर्णिमा दर्शन महोत्सव	संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद।	(०७९) ७५०५०१०-११.

* दिनांक २७ जून एवं ४ जुलाई को पूज्य बापूजी अज्ञातवास में रहेंगे।

गुरुबिन भव निधि तरहिं न कोई...

मुनि वशिष्ठजी के श्रीचरणों में भगवान रामचंद्रजी

भगवान वेदव्यासजी के श्रीचरणों में शुकदेव मुनि

गुरुपूर्णिमा
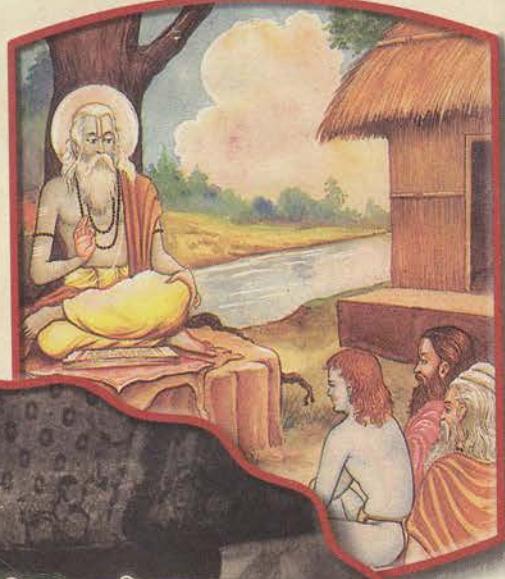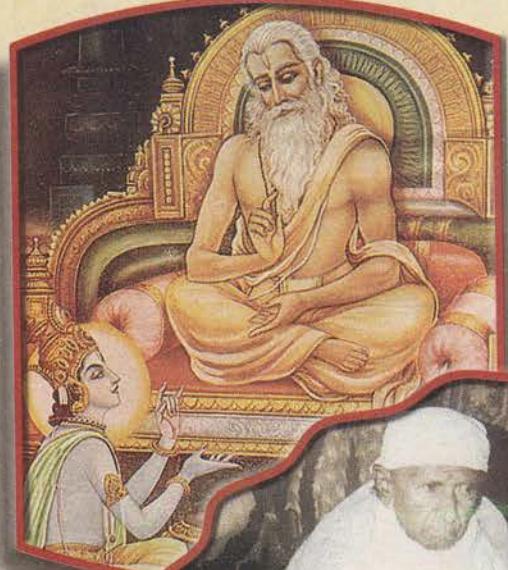
स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के श्रीचरणों में पूज्य बापूजी

महोत्सव
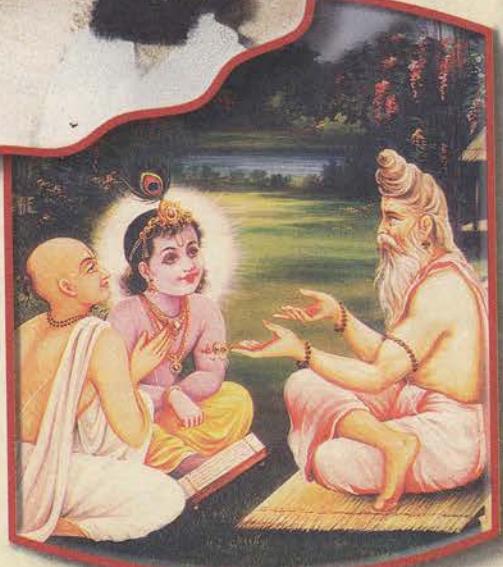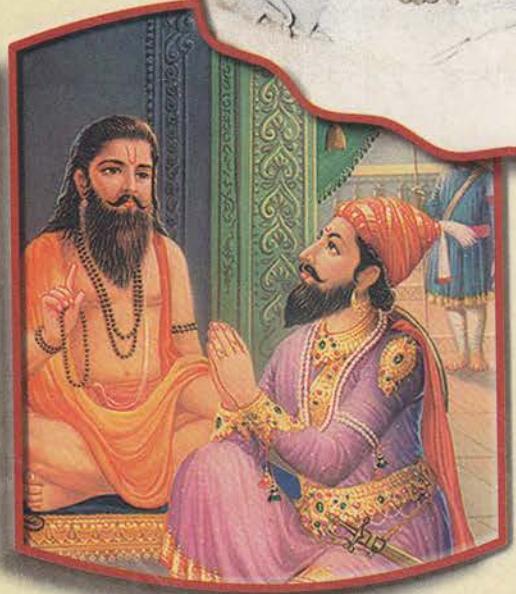
श्रीसमर्थ रामदास के श्रीचरणों में छत्रपति शिवाजी

सांदीपनि ऋषि के श्रीचरणों में भगवान श्रीकृष्ण

ऋषि-मुनि और देवताओं ने भी गुरु को शीश झुकाया है। श्रीराम श्रीकृष्ण व शुक आदि ने भी गुरु चरणों को ध्याया है।।

R.N.I. NO. 48873/91 REGISTERED. NO. GAMC/1132/2001. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH.
BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 833/MBI/2001 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2001 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2001 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.